

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।  
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ॥

वर्ष  
७५

गोरखपुर, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०५७, श्रीकृष्ण-सं० ५२२६, फरवरी २००१ई०

संख्या  
२

पूर्ण संख्या ८९१

## भगवान् सविताको नमस्कार

जयति किरणमाली भासुरः सप्तसप्तिसकलभुवनधामा प्राग्दिगन्तादृहासः।  
भवति विगतपापं कीर्तनादेव यस्य प्रचुरकलुषदोषैर्ग्रस्तमङ्गं नराणाम्॥  
प्राग्दिग्वधूतिलक भासुरकर्णपूर मन्दाकिनीदयितनाथ जगत्प्रदीप।  
हेमाद्रितापन नभस्तलहाररत्न सन्ध्याङ्गनावदनराग नमो नमस्ते॥

किरणोंकी मालासे मण्डित, अत्यन्त प्रकाशमान एवं सात घोड़ोंके रथपर चलनेवाले उन भगवान् सूर्यकी जय हो, जिनका तेज समस्त भुवनोंमें व्याप्त है, जो पूर्व दिशाके अदृहासकी-सी छवि धारण करते हैं तथा जिनके नामोंका कीर्तन करनेमात्रसे प्रचुर पाप-तापमय दोषोंसे ग्रस्त हुए मनुष्योंके अङ्ग निष्पाप हो जाते हैं। हे वधूरूपिणी प्राची दिशाके भाल-तिलक! देदीप्यमान कर्णपूर धारण करनेवाले मन्दाकिनीके प्रियतम नाथ! सुमेरु पर्वतको प्रकाशित करनेवाले! आकाशके महान् हाररत्न! अङ्गनारूपी सन्ध्याके मुखको रञ्जित करनेवाले! जगत्प्रदीप! आपको बारम्बार नमस्कार है।





[वर्तमान समयमें रोगोंकी संख्या बढ़ती जा रही है, पर कुछ ऐसे रोग हैं जिनके शिकार अधिकतर लोग हो जा रहे हैं, यदि प्रारम्भसे ही कुछ सावधानी बरती जाय और तत्काल उनकी चिकित्सा कर ली जाय तो वे रोग पनपते नहीं और ठीक भी हो जाते हैं। इस दृष्टिसे यहाँ विविध रोगोंकी सामान्य चिकित्सा प्रस्तुत की जा रही है, जो जानकार लोगोंद्वारा प्रेषित की गयी है—सं०]

## व्याधि और उनकी ऐकात्मिक चिकित्सा

( डॉ० श्रीबाचलविष्णुदासजी दत्तात्रय, आयुर्वेदतज्ञ )

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय सर्वाभयविनाशाय धन्वन्तरये अमृतकलशहस्ताय त्रैलोक्यनाथमहाविष्णवे ॥

जागतिक आरोग्य-संघटनाद्वारा यह मान्य किया गया है कि 'स्वास्थ्य' केवल पार्थिव शरीरपर निर्भर न होकर उसमें शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा सामाजिक समत्वकी प्राप्ति एवं निरामय-अवस्था होना—यह पूर्ण स्वास्थ्य है। भारतीय चिकित्सापद्धति (योग, आयुर्वेद तथा प्राकृतिक चिकित्सा)—के अनुसार शरीरमें आध्यात्मिक स्तरपर निरामयता निहित की गयी है।

प्राचीन भारतीय चिकित्सकोंके मतानुसार शरीर तीन प्रकारका होता है—

१. स्थूल शरीर—जिसे हम पार्थिव शरीर कहते हैं।
२. सूक्ष्म शरीर—इसमें प्राण, मन तथा बुद्धिका समावेश होता है।
३. कारण शरीर—इसमें आत्माका समावेश होता है। महर्षि पतञ्जलिने ये तीनों शरीर पञ्चकोशमें सम्मिलित किये हैं—

१. अन्नमय कोश—पार्थिव शरीर—Physical body ।
  २. प्राणमय कोश—प्राण शरीर—Ethereic body ।
  ३. मनोमय कोश—मानसिक शरीर—Mental body ।
  ४. विज्ञानमय कोश—बुद्धि शरीर—Intellectual body ।
  ५. आनन्दमय कोश—स्वानन्द आत्मा—casual body ।
- अन्नमय कोशमें पार्थिव शरीर यानी स्थूल शरीर आता है, जिसमें वाणी, पाणि-पाद, उपस्थ और गुदा—ये कर्मेन्द्रिय, रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र आदि सप्त धातुएँ और कान, आँख, त्वचा, वाणी (रसना) और नाक आदि पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ आती हैं। इसके साथ ही

पाचनसंस्थान, अस्थिसंस्थान, रुधिरसंस्थान, मज्जासंस्थान, श्वसनसंस्थान और उत्सर्जकसंस्थान—इनका भी समावेश होता है।

प्राणमय कोशमें स्थूलप्राण, सूक्ष्मप्राण तथा प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान—ये पञ्चप्राण और उनके देवदत्त, धनञ्जय, नाग, कूर्म, कृकल—ये उपप्राण आते हैं। जिनके द्वारा सम्पूर्ण शरीरका व्यापार चलता है। साँस लेनेसे पूरक, साँस रोकनेसे कुम्भक और साँस छोड़नेसे रेचक होता है।

मनोमय कोशमें मनके व्यापार संकल्प, विकल्प, विचार, मनोव्यापार आदिका समावेश होता है।

विज्ञानमय कोशमें बुद्धितत्त्व (Intelligence) कार्य करता है। अच्छे-बुरे विचारके अनुसार बुद्धि कार्य करनेकी आज्ञा देती है।

आनन्दमय कोश यह अपनी स्वानन्द निरामय अवस्था है। स्वानन्दस्वरूप है, आदि-अन्तरहित है, सुखका सागर है और चित्तका साक्षी है। यही मोक्षावस्था है और इसकी प्राप्ति योगका उद्देश्य है।

जब उपर्युक्त पञ्च कोशोंमें, स्थूल, सूक्ष्म पञ्चमहाभूतोंमें, पञ्चज्ञानेन्द्रिय-पञ्चकर्मेन्द्रियोंमें विकृति पैदा हो जाती है तो व्याधिका आविर्भाव होता है।

सामान्यतः व्याधि दो प्रकारकी है—

१. आधिज व्याधि तथा २. अनाधिज व्याधि।

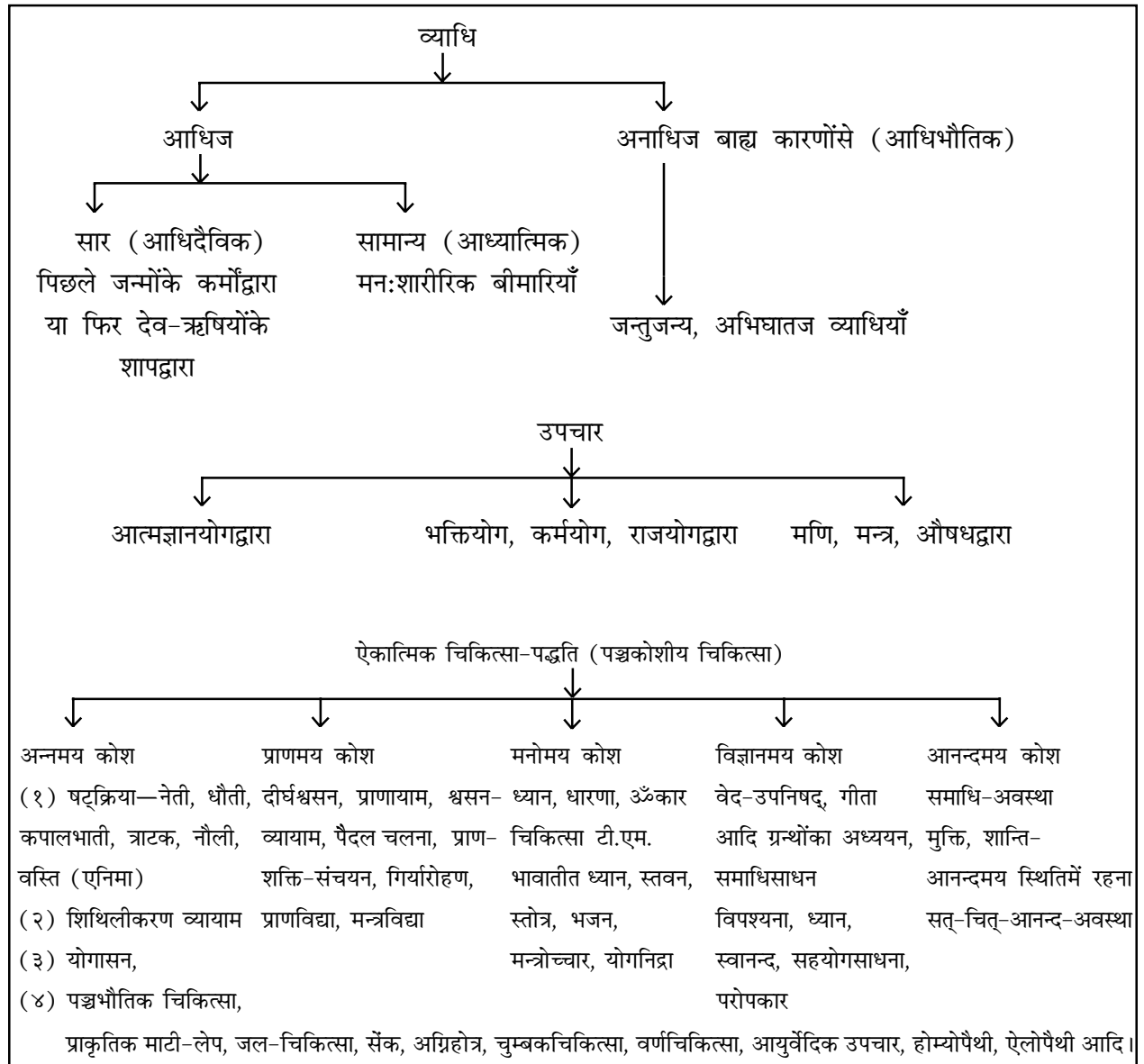
[ १ ] आधिज व्याधि—इसके सार और सामान्य—ये दो प्रकार होते हैं।

सार व्याधि पिछले जन्मोंके कारण आनुवंशिक या गुरु, देव तथा पितरोंके शापके कारण उत्पन्न होती है। इसे

हम आधिदैविक व्याधि कहते हैं।

सामान्य व्याधिमें सर्वसाधारण व्याधियाँ हैं, जैसे— उच्च रक्तचाप, मधुमेह, दमा (साँसकी बीमारी), संधिवात, अल्सर-जैसी बीमारियाँ, जो मनका स्वर बिगड़ जानेसे होती हैं। इन्हें हम मनःशारीरिक बीमारियाँ (Psycaosomatic Disorder) कहते हैं। ये आध्यात्मिक व्याधियाँ भी कहलाती हैं। मनके स्वरपर चञ्चलत्व यानी विकृतिनिर्माण होनेपर उसका प्रभाव प्राणकोशपर होता है। फलतः उनके व्यापार अनियमित होते हैं और उसके परिणामस्वरूप व्याधि यानी शारीरिक बीमारियाँ भी पैदा होती हैं।

[ २ ] अनाधिज व्याधि—जो बाह्य कारणोंसे यानी पञ्चमहाभूतोंके प्रकोपके कारण होती है। यानी जलना, डूबना, गिर जाना, गड़ जाना या अपघातजन्य (अभिघातज) व्याधियाँ और जीव-जन्तुके कारण उत्पन्न होनेवाली बीमारियाँ जैसे—कॉलरा, गैस्ट्रो, संग्रहणी और सभी प्रकारके ज्वर आदि बाह्य कारणोंसे होते हैं, इन्हें हम आधिभौतिक व्याधियाँ कहते हैं। इनका उपचार भी ऐकात्मिक चिकित्सापद्धतिद्वारा कर सकते हैं। यहाँ व्याधियोंके विविध स्वरूपों और उपचारको विभिन्न तालिकाओंके द्वारा दर्शाया गया है—



आजकलके विज्ञानयुगमें मानव भौतिक वस्तुओंके पीछे भाग रहा है, वह मानता है कि ये वस्तुएँ (टी.वी., फ्रीज, कम्प्यूटर, वाशिंग मशीन आदि-आदि) आनन्द दे सकती हैं। उन्हें जुटानेके लिये वह अधिक सम्पत्ति कमाना चाहता है। उसके लिये वह भले-बुरे मार्ग अपनाता है और उसके कारण स्पर्धा, त्रास, तनाव, ईर्ष्या, द्वेष, मत्सर, काम, क्रोध-जैसे विकारोंका शिकार बन जाता है। साथ ही उच्च रक्तचाप,

दमा, पेटका अल्सर, संधिवात, मधुमेह-जैसी मनःशारीरिक बीमारियोंका शिकार हो जाता है। सुख-आनन्द क्या है यह वह नहीं जानता, फलतः दुःख भोगता है। इस ऐकात्मिक पञ्चकोशीय चिकित्साको अपनाया जाय तो स्वस्थ आरोग्य प्राप्त किया जा सकता है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभागभवेत्॥



## उदर-रोगके कारण, लक्षण एवं आयुर्वेदीय चिकित्सा

( डॉ० श्री एस०पी० पाण्डेय, एम०डी०, आयुर्वेदरत्न )

सर्वमेवोदरं प्रायो दोषसंघातजं यतः।

अतो वातादिशमनीः क्रियाः सर्वत्र कारयेत्॥

सम्पूर्ण उदररोग यतः त्रिदोषज होते हैं, अतः सर्वत्र वात आदि तीनों दोषोंको शान्त करनेवाली क्रियाएँ करनी चाहिये। उदरके दोषपूर्ण होनेपर अग्निमान्द्य हो जाता है, अतः इस रोगमें अग्निप्रदीपक और लघु भोजन करना चाहिये। जौ, मूँग, दूध, आसव, अरिष्ट, मधु आदिका इस रोगमें उपयोग करना उत्तम है।

दोषोंके अति संचयसे तथा स्रोतोंके बंद हो जानेसे उदररोग पैदा होते हैं। अतः उदररोगीको नित्य विरेचन देना चाहिये। विरेचनार्थ गोमूत्रका अथवा दूधके साथ एरण्ड-तेलका पान करना चाहिये।

उदर शब्दसे उदर-प्रदेशमें रहनेवाले क्षुद्रान्त्र, बृहदन्त्र, यकृत, प्लीहा तथा उदरावर्णीकला आदि अङ्ग ग्रहण किये जाते हैं और इन प्रदेशोंमें होनेवाली विकृतिका नाम उदररोग माना जाता है। जठराग्निकी दुर्बलतासे मल-वातादि दोष (मूत्र-पुरीष) जब बढ़ जाते हैं, तब उनसे अलग-अलग अनेकों रोग उत्पन्न होते हैं। विशेषकर मलवृद्धिसे अग्निकी दुर्बलता और उदररोग उत्पन्न होते हैं। मलिन आहारोंसे अग्निके मन्द हो जानेपर जब उचितरूपसे आहारोंका पाचन नहीं हो पाता तब उदरमें दोषोंका संचय होने लगता है। यह दोष-संचय प्राणवायु और अपानवायुको विशेषरूपसे दूषित कर ऊर्ध्व तथा अधोमार्गोंको रोक देता है, उससे जब ऊपर एवं नीचेका मार्ग बंद हो जाता है तब वह दूषित मल और वातादि दोष त्वचा तथा मांसके बीचमें आकर उदरमें आध्मान

उत्पन्न करते हैं और उदररोगका कारण बनते हैं—

रोगाः सर्वेऽपि जायन्ते सुतरामुदराणि च।

अजीर्णान्मलिनैश्चानैर्जायन्ते मलसंचयात्॥

आहारका पाचन उदरमें होता है। जब पाचनकी विकृति हो जाती है तो दोषोंका संचय उदरके विभिन्न अङ्गों यकृत तथा प्लीहा आदिमें होता है, जिससे वातादि दोष वहीं रुक जाते हैं और उदर फूल जाता है, हलकी वेदना होती है, पेटमें गुड़गुड़ाहट और अजीर्णके सभी लक्षण पाये जाते हैं; साथ ही शिरःशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, आलस्य आदिके लक्षण भी पाये जाते हैं।

उदररोग अत्यन्त उष्ण, लवण, क्षार, विदाही अन्न तथा अम्लरसके सेवनसे उत्पन्न होता है, इसके अतिरिक्त मल-मूत्रके वेगोंको रोकने, मल-मूत्रवह स्रोतोंके दूषित होने, आहारके न पचने एवं मानसिक कष्टसे होता है और दही आदि द्रव पदार्थोंके अधिक सेवनसे, अर्श या वातके कारण मलके रुक जानेसे और आन्त्रके फट जानेसे भी उदररोग उत्पन्न होता है।

क्षुधाका नाश होना, मुखका मीठा रहना, स्निग्ध एवं गुरु अन्नका अत्यधिक देरसे पचना, खाये अन्नका विदाह होना, पैरोंपर थोड़ा सूजन होना, निरन्तर बलका ह्रास होना, थोड़े परिश्रमपर श्वासका फूलना आदि उदररोगके पूर्वरूप हैं।

पृथक् दोषसे तीन वातोदर तथा श्लेष्मोदर, सन्निपातसे एक प्लीहोदर, बद्धोदर, क्षतोदर तथा उदकोदर—ये आठ प्रकारके उदररोग होते हैं।

प्रत्येक उदररोगकी अन्तिम अवस्थामें जलोदर हो

जाता है और यह उदररोगकी असाध्य अवस्था है। अतः उदररोगके प्रारम्भमें उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। बलवान् व्यक्तिके उदररोगमें जलका संचय न हुआ और उदररोग नूतन हुआ हो तो यत्नपूर्वक चिकित्सा करनेपर वह साध्य होता है। प्रायः सभी उदररोग उत्पन्न होते ही कृच्छ्रसाध्य होते हैं। उदररोगसे पीडित रोगियोंको नित्य विरेचन-औषधि देकर विशोधन करना चाहिये। विरेचन देनेसे संचित दोष बाहर निकल जाते हैं। स्रोतोंका मुख खुल जाता है, जिससे रोग शान्त हो जाते हैं। वातजन्य उदररोगमें स्नेहसे युक्त विरेचनका ही प्रयोग करना चाहिये।

उदररोगके शमनके लिये पीपर, सोंठ, दन्तीका मूल, चित्रकका मूल तथा विडङ्ग—इन पाँचों द्रव्योंका चूर्ण समभागमें और हरड़का चूर्ण इससे दूनी मात्रामें लेकर गरम जलसे इस चूर्णका सेवन करना चाहिये।

मांस, गरिष्ठ भोजन, चावलका आटा, तिल, व्यायाम, दिनमें सोना, घोड़ा आदि सवारियोंपर चलना, उष्ण, नमकीन, खट्टे, विदाही अन्नका त्याग करना चाहिये।

उदररोगकी चिकित्सामें अनेक योगोंका वर्णन आया है। यदि उदररोगसे पीडित रोगियोंके शरीरमें कफ वायु या पित्तसे आवृत्त हो जाय अथवा पित्त कफके द्वारा वायु आवृत्त हो जाय और रोगी बलवान् हो तो उदररोगनाशक औषधियोंके साथ एरण्ड-तेलका पान करना अति लाभदायक है। उदररोगमें दोषोंके अनुबन्धसे रक्षाके लिये तथा बलकी स्थिरताके लिये औषधि-प्रयोगके द्वारा शरीरके क्षीण तथा सम्पूर्ण धातुओंके क्षीण हो जानेपर गोदुग्ध अत्यन्त हितकारी होता है।

**औषध-प्रयोग—**(१) सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली, अजवायन, सैन्धव लवण, श्वेत जीरक, काला जीरा, हींग—प्रत्येकका चूर्ण समभाग मिश्रितकर भोजनसे पूर्व तीन ग्रामकी एक मात्रा घीके साथ सेवन करनेसे अग्रिवृद्धि होती

है तथा वातरोग नष्ट होते हैं।

(२) अग्रितुण्डी वटी प्रातः—सायं दो-दो गोली जलसे भोजनके बाद।

(३) कुमार्यासव—चार-चार चम्मच बराबर जल मिलाकर भोजनके बाद लम्बे समयतक सेवन करना चाहिये।

(४) मट्टेका प्रयोग—जीरा [भूनकर], काला नमक, काली मिर्चके साथ।

(५) आरोग्यवर्धिनी—दो-दो गोली तीन बार जलसे।

(६) अश्विनीनारायण चूर्ण—एक चम्मच सोते समय जलसे लेना चाहिये। यह समस्त उदररोगोंके लिये रामबाण औषधि है। इसका अद्भुत लाभ देखनेको मिला है।

यह मलको कुपित होने ही नहीं देता। प्रायः अनियमित दिनचर्याके कारण अधिकतर लोग विबन्धरोगसे ग्रसित होते हैं। परिणाम होता है वातार्श (बवासीर) और उदररोगका यहींसे प्रारम्भ होना।

उदररोगमें यकृतकी सुरक्षापर विशेष ध्यान—संतुलित, सुपाच्य आहारका सेवन एवं दिनचर्याका सम्यक् पालन उत्तम स्वास्थ्य एवं दीर्घायुके लिये अति आवश्यक है।

अश्विनीनारायण चूर्णकी प्रशंसामें लिखा है—

नारायणं भजत रे पवनेन युक्ता

नारायणं भजत रे जठरेण युक्ताः।

नारायणं भजत रे भवभीतियुक्ता

नारायणात् परतरं न हि किंचिदस्ति॥

भिन्न-भिन्न अनुपानके साथ इसका सेवन करनेसे प्रायः सभी प्रकारके रोग दूर होते हैं। मधुमेहके रोगीके लिये यह अत्यन्त लाभप्रद है। अन्य औषधियोंके साथ इसका सेवन करनेसे औषधियोंका लाभ भी शीघ्र प्राप्त होने लगता है।



## दन्त-दर्द-निवारक अनुभूत प्रयोग

खड़ी सोंठको पानीमें शिला (पत्थर)—पर घिसकर लेप तैयार कर ले एवं लेपको गरम करके (सहन करने योग्य गरम) जिस दाँत या दाढ़में दर्द हो उसी तरफ गालपर लगाकर सूखनेतक रहने दे। तत्काल लाभ होगा। लेपको चार-पाँच घण्टेतक रहने दे। ध्यान रहे इस लेपका प्रयोग मुँहके अंदरकी तरफ

नहीं करे। लेपका प्रयोग पूर्ण लाभके लिये तीन दिन लगातार करे।

[श्रीरामगोपालजी रुणवाल

द्वारा—अभिनव एजेन्सीज, एफ-१६,

बाबा दीप काम्प्लेक्स, ७। १ महारानी रोड, इन्दौर—

७ (म० प्र०)]



## मधुमेह—कारण और निवारण

( डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्०ए०, पी-एच्०डी० )

प्रदर और प्रमेह आजके स्त्री-पुरुष-समाजमें व्याप्त वे रोगविशेष हैं, जिनसे सम्भव है कोई विरला ही अपरिचित हो। आयुर्वेदमें परिगणित बीस प्रकारके प्रमेहोंमें ‘मधुमेह’ सर्वाधिक भयंकर रोग है। वर्तमान युगका आरामतलबी वर्ग विशेषतः मिथ्याहार-विहारके कारण इस रोगसे ग्रस्त है। यह रोग दीर्घकालतक मानवको पीड़ित करता है और समुचित चिकित्सा न होनेपर मनुष्यको घुला-घुलाकर मारता है। माधवनिदानमें इस रोगकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें लिखा है—

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि  
ग्राम्यौदकानूपरसाः पयांसि ।  
नवान्नपानं गुडवैकृतं च  
प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम् ॥

(प्रमेहनिदान १)

अर्थात् सानन्द बैठे रहने, कोमल शैय्यापर सोने, अधिक मात्रामें दूध-दही खाने, ग्राम्य (छाग, मेष आदि), औदक (मत्स्यादि) एवं सजल तथा भूमिजात (वराह-कच्छप आदि) जीवोंका मांस खाने तथा नया चावल, चीनी, मिस्त्री आदि मधुर पदार्थ और कफकारी वस्तुओंके सेवनसे ‘प्रमेहरोग’ होता है।

मधुमेहकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें माधवनिदानमें बताया गया है\* कि समयपर उपचार न करनेसे सभी प्रमेह मधुमेहमें परिणत होकर असाध्य कोटिमें पहुँच जाते हैं। मधुमेहमें रोगी मधुके समान मूत्र त्याग करता है। यह दो प्रकारसे होता है, एक धातृक्षयसे प्रकृषित वायुसे और दूसरा

पित्त या कफसे आवृत वायुके द्वारा उत्पन्न होता है। आवृत वायुसे मधुमेहमें आवरक दोष और वायुके लक्षण भी प्रकट हो जाते हैं तथा अकस्मात् ये लक्षण कभी कम और कभी अधिक होते हैं। इस प्रकार क्रमशः रोग कृच्छ्रसाध्य हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि धातुक्षयसे वायु कुपित होकर मधुमेह Diabetes Mellitus उत्पन्न कर देता है अथवा पित्त और कफ जब वायुका मार्ग रोक देते हैं, तब रुद्धगति वायु ही मधुमेहका जनक बन जाता है। विशेषतः पित्त और कफद्वारा जब वायुके स्रोत रुद्ध हो जाते हैं, तब जो मधुमेह उत्पन्न होता है, उसीमें वायुके लक्षण लक्षित होते हैं और तब बिना किसी कारणके ह्रास अथवा वृद्धि पाकर रोग कष्टसाध्य हो जाता है। प्रायः सभी मेह समयपर चिकित्सा न करनेपर मधुमेहरूपमें परिणत हो जाते हैं। अतः सभी मेहोंको मधुमेह कहा जा सकता है।

चरक-संहितामें इसकी सम्प्राप्तिके सम्बन्धमें बताया गया है कि कफकारक वस्तुओंके सेवन करनेसे बढ़ा हुआ कफ, मेद, मांस और वस्ति (मूत्राशय) -में रहनेवाले शारीरिक क्लेदको दूषितकर प्रमेहको उत्पन्न करता है। उष्ण द्रव्योंके सेवनसे बढ़ा हुआ पित्त, मेद, मांस और शारीरिक क्लेदको विकृत कर पित्तज प्रमेह उत्पन्न करता है। कफ और पित्तदोष जब वातकी अपेक्षा क्षीण (न्यून) रहते हैं तो बढ़ा हुआ वात धातुओं (वसा, मज्जा, ओस और लसिका) -को मूत्राशयमें खींचकर ले जाता है, तब वातज प्रमेहको उत्पन्न करता है।

\* सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः । मधुमेहत्वमायान्ति तदाऽऽध्या भवन्ति हि ॥

मधुमेहे मधुसमं जायते स किल द्विधा । क्रुद्धे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतपथेऽथवा ॥

आवृतो दोषलिङ्गानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयन् । क्षणात्क्षीणः क्षणात्पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम् ॥

मधुरं यच्च मेहेषु प्रायो मध्विव मेहति । सर्वेऽपि मधमेहाख्या माधुर्याच्च तनोरतः ॥

(प्रमेहनिदान, २३—२६)

† मेदश्च मांसं च शरीरजं च क्लेदं कफो बस्तिगतं प्रदूष्य ।

करोति मेहान् समुदीर्णमृष्णैस्तानेव पित्तं परिदृष्य चापि ॥

क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्य बस्तौ धातुन् प्रमेहाननिलः करोति ।

दोषो हि बस्तिं समुपेत्य मूत्रं संदृष्य मेहाञ्जनयेद्यथास्वम् ॥

(चिकित्सास्थान ६।५-६)

इस रोगमें सर्वप्रथम हेतुओंका त्याग आवश्यक है। इसके साथ ही चिन्ता, शोक, भय आदिसे मुक्त रहना भी आवश्यक है। आयुर्वेदानुसार ऋतुचर्याका पालन, शीत, आतप आदिसे बचाव, औषध-सेवनकी अपेक्षा पथ्यपर विशेष ध्यान देना—इस रोगके रोगीके लिये अत्यावश्यक है; क्योंकि लोलिम्बराजने कहा है—

पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः।

पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः॥

अर्थात् रोगपीडित व्यक्तिको पथ्यपूर्वक रहनेपर औषध-सेवनसे क्या प्रयोजन और पथ्यपूर्वक नहीं रहनेपर औषध-सेवनसे क्या प्रयोजन?

मधुमेह है क्या? इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है कि पुराने मेहरोगकी विशेषावस्था ही मधुमेह है। मधुमेह होनेसे पूर्व इसके रोगीका मेहके किसी भेदसे ग्रस्त रहना आवश्यक है। लालामेह, शुक्रमेह, मण्डमेह, उदकमेह, इक्षुमेह आदि बीस प्रकारके मेह ही पुराने होकर मधुमेहरूपमें परिणत होते हैं।

मधुमेहका प्रधान लक्षण है—बहुमूत्रता। इसके रोगीके मूत्रके साथ शरीरगत शर्करा भी निःसृत होती है। अतः ऐसे मूत्रपर मक्खी बैठती है, चींटी लगती है और मूत्रोत्सर्ग स्थलपर धब्बा भी पड़ता है।

दोषोंके प्रकुपित होनेपर यकृतकी विकृतिसे यह रोग उत्पन्न होता है। जठराग्नि विषम होकर पाचनक्रियाको विकृत कर देती है। परिणामस्वरूप शर्करा पाचनक्रियामें भली प्रकार उपयुक्त न होकर अस्वाभाविकरूपसे संचित होने लगती है और परिणाम यह होता है कि शर्करा रक्तमें अधिक परिमाणमें जा मिलती है। वृक्क भी रक्तशुद्धिके समय मूत्रमार्गद्वारा उसे निष्कासित करते हैं और इस प्रकार मधुमेहका श्रीगणेश तनुक्षरणार्थ हो जाता है।

मधुमेहके उत्पादक कारण निम्नलिखित हैं—

१. प्रमेह हो जानेपर उसकी यथासमय ठीक-ठीक चिकित्सा न होनेपर।

२. अधिक मधुर पदार्थ तथा चावल-सेवन करनेपर।

३. अनियमित तथा अत्यधिक स्त्री-प्रसंगसे।

४. परिश्रम अथवा सहवासके तत्काल पश्चात् शीतल जल पीनेसे।

५. अप्राकृत मैथुनसे।

६. अश्लील चित्र, साहित्य आदि देखने-पढ़नेसे। समष्टिरूपमें इस रोगमें अधिक बैठना, दिनमें सोना, नये धान्य, दही, मद्य, सिरका, तेल, क्षार, घी, गुड़, इमली, गन्नेका रस, आनूप-देशके प्राणियोंका मांस, विरुद्ध भोजन, दूषित जलका सेवन भूलकर नहीं करना चाहिये। साथ ही मूत्रवेगको रोकना, धूम्रपान, स्वेदन, रक्तनिर्वहण आदिसे भी बचना चाहिये।

यह रोग वस्तुतः छद्म शत्रुवत् होता है। अतः इसके प्रति पूर्ण जागरूक रहना आवश्यक है; क्योंकि यह रोग धीरे-धीरे उत्पन्न होता है और बहुत समयतक अपने-आपको प्रकट नहीं करता, परिणामतः रोगीका ध्यान बहुत समयतक इसकी ओर नहीं जा पाता; क्योंकि इस कालमें इससे आक्रान्त व्यक्तिको सामान्य-सी दुर्बलता मात्र अनुभूत होती है, जिसे रोगी सामान्य समझकर टालता जाता है, पर यह प्रमाद महंगा पड़ जाता है। जैसे ही निम्न लक्षण पूरे या अधूरे दृष्टिगोचर हों चिकित्सकसे परामर्श करना चाहिये—रात्रिमें कई बार मूत्र आना, मूत्र मधुवत् चिपचिपा होना, मूत्र मीठा तथा पीला होना, शिरोवेदना, विष्टम्भ, क्षुधाधिक्य, रूक्षता, पिपासाधिक्य आदि। मधुमेहके रोगीको बैठनेसे लेटना और सोना अधिक रुचिकर लगता है।

मूत्रमें शर्कराकी अधिकतासे दृष्टिमान्ध, अदीठ, पीठका फोड़ा (Corbuncle) आदि हो सकते हैं, अतः शीघ्र ही ध्यान देना चाहिये जिससे रोग जीर्ण न होने पाये।

मधुमेहके रोगीको कच्चे टमाटर, तीनों प्रकारकी गोभी (गाँठ, फूल, पत्ता), पत्तीकी भाजी (चौलाई आदि) कच्ची सेमकी फली (Tender field beans) का सेवन नियमित रूपसे करना चाहिये। तले हुए पदार्थ, आलू, पके टमाटर, भिण्डी, गाजर, चुकन्दर, काशीफल (Red pumpkin,) कच्चा केला तथा अरहरकी दालका सेवन सर्वथा त्याग देना चाहिये। चनेका निस्सार (whole Bengal Gram extract) का सेवन भी इस रोगमें लाभप्रद है। इस रोगके उपशमनार्थ निम्न प्रयोग भी प्रयुक्त किये जा सकते हैं—

१. वसन्तकुसुमाकर १ ½ रत्ती, शुद्ध अहिफेन (Opium) (अफीम) ¼ रत्तीकी छः मात्रा बना ले तथा एक-एक मात्रा प्रातः-सायं मधु या मक्खनसे ले तथा विजयसार एक तोला काँचके गिलासमें भिगोकर बारह घंटे बाद दोनों

इसके अतिरिक्त वसन्तकुसुमाकर-रस, सोमनाथ-रस, बृहत् सोमनाथ-रस, नागभस्म, यशदभस्म, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, हेमनाथ, स्वर्णवंग, जम्ब्वासव, लोध्रासव आदि शास्त्रीय औषधियोंका प्रयोग भी चिकित्सकके परामर्शानुसार किया जा सकता है। यदि और कुछ न कर सके तो बिल्व, पीपल, जामुन तथा श्यामा तुलसीके पत्ते समान मात्रामें लेकर, अलग-अलग सुखा, चूर्णकर एक साथ मिला ले और ठंडे जलसे एक-एक चम्मच यह चूर्ण दोनों समय ले अथवा बिल्वपत्र स्वरस तथा करेला स्वरस एक-एक तोला पीनेसे लाभ होता है।

सर्वेक्षणके आँकड़ोंके अनुसार सात प्रतिशत आदमी मधुमेहसे ग्रस्त हैं। देशमें इस समय ढाई करोड़से अधिक लोग इस बीमारीकी चपेटमें हैं। विश्व-स्वास्थ्य-संगठन (WHO)-के अनुसार आगामी दो दशकोंमें यह संख्या दो गुनी हो जायगी। ये आँकड़े चौंकानेवाले हैं। भारतीय चिकित्सा-विज्ञानके कई एक डॉक्टरोंके अनुसार डायबिटीजके नियन्त्रित करनेके सारे उपाय बेकार हो चुके हैं। डायबिटिक सेल्फ-केयर फाउण्डेशनका कहना है कि एक ओर तो



लोगोंकी खान-पानकी आदतोंमें बदलाव आ रहा है और दूसरी ओर रोजगार ऐसा हो चला है कि शारीरिक श्रम कम करना पड़ता है, जिससे डायबिटीजके मामलोंमें तेजीसे वृद्धि होनेसे बड़ी संख्यामें गरीब इंसुलिनके अभावमें मौतके मुँहमें जा रहे हैं तथा डायबिटीजको लेकर हालात बेकाबू हो रहे हैं। स्वास्थ्य-विशेषज्ञ इस बीमारीको 'डायबिटीज बम' के नामसे सम्बोधित कर चेताने लगे हैं। 'नेशनल मेडिकल एजुकेशन रिसर्च फोरम' के मतानुसार जागरूकताका अभाव और साक्षरताकी कमीके कारण यह समस्या और जटिल हो गयी है, क्योंकि इस बीमारीसे ग्रस्त अनेकों लोग इसके बारेमें जानते भी नहीं। अतः इस व्याधिको गम्भीरतासे लेते हुए जनमानसमें इसके प्रति जागरूकता फैलानी चाहिये, इस हेतु मधुमेहके कारण, लक्षण एवं उपचार-पद्धतिको प्रचारित-प्रसारित करना वाञ्छनीय है।

वर्तमान कालमें प्रगतिशीलता तथा आधुनिकताके नामपर प्रदूषित, अनुचित तथा अप्राकृतिक विधिके आहार-व्यवहार, खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, तनाव-लगावकी मनोवृत्तिके फलस्वरूप भी मनुष्यमें मधुमेहकी व्याधि तेजीसे बढ़ रही है। इस बीमारीकी चपेटमें हर उस व्यक्तिके आनेकी सम्भावना रहती है, जो श्रमजीवी—परिश्रमी नहीं, आरामकी जिन्दगी जीता, खाता-पीता तथा मोटा-ताजा है। विकसित देशोंमें यह आम धारणा है कि ४० वर्षकी आयु होते-होते यदि पेटमें अल्सर नहीं हुआ तो क्या खाक खाया-पिया? यदि हृदयरोग या उच्च रक्तचाप नहीं हुआ तो जिन्दगीमें क्या झकमारी? इसी प्रकार डाइबिटीज बड़े आदमी होनेकी निशानी रही, क्योंकि कोई बिरला ही सौभाग्यशाली होगा जो किसी भी क्षेत्रमें बड़ा आदमी हो और उसे यह रोग न हो। यदि अत्यधिक प्यास तथा भूख, ज्यादा पेशाब आना, थकावट, अचानक वजन कम होना, जख्मका देरीसे भरना, गम्भीर हिचकी आना, पैरोंमें भड़कन-झनझनाहट रहना, अनिद्रासे तनाव, तलुओंकी जलन, चिड़चिड़ापन, नेत्रज्योति कम होना, सिर भारी रहना आदिके लक्षण हैं तो आप डायबिटिक हो सकते हैं। डायबिटीजसे कई प्रकारकी आन्तरिक विकृतियाँ गम्भीर समस्यायें यथा—किडनी (गुर्दा)—का खराब होना, अंधापन, हृदयघात (Heart Attack), गेस्टोपेरेसिस आदि रोगोंकी सम्भावना बढ़ जाती है। अपनी प्रारम्भिक विकृतिके साथ यदि मधुमेहकी व्याधि एक बार

हो जाती है तो उम्रभर खामोशीसे साथ रहती है।

व्यापक रूपसे व्याप्त मधुमेहकी बीमारीके मामलेमें सर्वाधिक ध्यान देनेवाली बात यह है कि इसको नियन्त्रित या नष्ट करनेमें पथ्य-अपथ्यका पालन करना औषधि-सेवनकी अपेक्षा अधिक हितकर है। बिना पथ्य-अपथ्यके पालन किये केवल औषधिके सेवनसे इस बीमारीमें 'मर्ज' बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की' की कहावत चरितार्थ होती है। सत्यतः मधुमेह ऐसा रोग है, जिसके लिये अनियमित आहार-विहार ही उत्तरदायी है। जिसमें समय रहते सुधार न करने तथा लापरवाही जारी रहनेपर यह रोग असाध्य स्थितिमें पहुँच जाता है और फिर मृत्युपर्यन्त पीछा नहीं छोड़ता। अस्तु,

इसके नियन्त्रणका सबसे सरल-सुरक्षित मार्ग है नियन्त्रित उचित आहार-विहार। नवीन शोधोंसे भी सिद्ध हो चुका है कि जिनके शरीरमें इन्सुलिनका बनना बिलकुल बंद नहीं हुआ है, उनका उपचार आहार-विहारके नियमनसे सम्भव है। मधुमेह संक्रमण (Infection)—से होनेवाला संक्रामक रोग नहीं है, परंतु वंशानुगत प्रभावसे हो सकता है। फलतः जिनके माता-पिता, दादा-दादी या नाना-नानीको यह रोग रहा हो, उन्हें बचपनसे ही आहार-विहारके मामलेमें अधिक सावधानी बरतनी चाहिये और इस रोगके प्रारम्भिक लक्षण पता चलते ही तत्काल आहार-विहारमें उचित सुधार कर लेना चाहिये ताकि दवा खाने, इलाज करानेकी नौबत न आये। इस रोगमें एक बार दवा विशेषकर इन्सुलिन लेनेके चक्करमें फँसनेपर जीवनपर्यन्त इस चक्रसे निकल नहीं पाते। अतः इस चक्करमें पड़नेसे बचने-हेतु नियन्त्रित-संतुलित आहार लेना परमावश्यक है।

**ध्यान रखने योग्य बातें—**मधुमेहके लक्षण मालूम होते ही मूत्र (Urine) तथा रक्त (Blood)—की जाँच कराये जिससे पता चल सके कि यदि मूत्रमें शर्करा (Sugar) आ रही है तो रक्त-शर्करा सामान्यसे अधिक तो नहीं है। प्रातः खाली पेट रक्तमें शर्कराकी मात्रा ८० से १२०mg. (प्रति १०० सी० सी० रक्त)—के मध्य होनेपर सामान्यतः मनुष्य स्वस्थ होता है। १२० से अधिक तथा १४० से कम होनेपर मधुमेहकी प्रारम्भिक अवस्था होती है। परंतु यह मात्रा १४० से अधिक होनेपर समझ ले कि मधुमेहसे ग्रस्त हैं और इसने जड़ जमा ली है। भोजन करनेके दो घंटेके बाद की

गयी जाँचमें रक्त-शर्करा १२०mg. से कम होनेपर मनुष्य स्वस्थ, १४०mg. या इससे कम होनेपर मधुमेहकी प्रारम्भिक अवस्था, किंतु यह १४०mg. से अधिक पायी जानेपर इस रोगसे ग्रस्त माना जायगा। रोगकी वस्तुस्थिति जानने-हेतु ४० वर्षसे अधिक आयुवाले स्त्री-पुरुषों, विशेषकर मोटे नर-नारियोंको २-३ माहके अन्तर्गत एक बार स्वमूत्र और रक्तकी जाँच कराते रहना चाहिये, क्योंकि यह रोग धीरे-धीरे पनपता है और उग्र अवस्था धारण करनेसे पहले इसका स्पष्ट रूपसे पता नहीं चलता। अतएव पेशाब तथा रक्तमें सामान्य मात्रासे अधिक मात्रा में शर्करा पायी जानेपर आहारमें तुरंत उचित सुधार कर नियन्त्रित-संतुलित आहार लेना प्रारम्भ करके आवश्यक परहेजका भी दृढ़तासे पालन करना चाहिये।

मधुमेह-रोगमें संतुलित आहार और सख्त परहेज करनेका महत्त्व तथा लाभ औषधि-सेवनसे भी अधिक है, क्योंकि उचित आहार लेने तथा परहेजका सही पालन करनेपर बिना दवाका सेवन किये भी यह रोग नियन्त्रणमें रहता है यानी एक तरहसे रोग रहता ही नहीं। इसके विपरीत असंतुलित आहारका सेवन तथा बदपरहेजी करनेपर यह रोग नहीं जा पाता। इस सम्बन्धमें आयुर्वेदका यह श्लोक द्रष्टव्य है—

**विनाऽपि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते।**

**न तु पथ्यविहीनस्य भेषजानां शतैरपि॥**

अर्थात् सैकड़ों दवाएँ खानेपर भी पथ्यविहीन व्यक्तिका रोग नष्ट नहीं होता। मन वशमें होने, संतुलित आहार करने, उचित विहार बरतने तथा व्यायाम या योगासनका अभ्यास होनेपर मधुमेहरोगसे ग्रस्त तथा त्रस्त होनेका प्रश्न ही नहीं उठेगा।

**दिनचर्या एवं पथ्य-अपथ्य—**मधुमेहका रोगी प्रातः भ्रमणोपरान्त घरमें जमा हुआ दही स्वेच्छानुसार थोड़ा-सा जल, जीरा तथा नमक मिलाकर पीये। दहीके अलावा चाय-दूध कुछ न ले। इसके साथ मेथी दानेका पानी, जाम्बुलिन, मूँग-मोठ आदिका प्रयोग करे, इसके ३-४ घंटे बाद ही भोजन करे। भोजनमें जौ-चनेके आटेकी रोटी, हरी शाक-सब्जी, सलाद और छाछ-मट्ठाका सेवन करे। भोजन करते हुए छाछको घूँट-घूँट करके पीते रहे। भोजनके पश्चात् फल लेवे। जौ-चनेकी रोटी स्वादिष्ट, शक्तिवर्द्धक एवं स्फूर्तिदायक

होनेके साथ-साथ वजन घटानेमें भी सहायक होती है। सायंकालका भोजन यथासम्भव ७ बजेतक कर ले। भोजन फुरसतके अनुसार नहीं, बल्कि ठीक निश्चित समयपर ही करे। प्रतिदिन निश्चित समयपर भोजन करनेसे रक्त-शर्कराकी मात्रा सामान्य अवस्थामें बनी रहनेमें सहायक होती है।

मधुमेहका रोगी भोजनमें मीठे पदार्थ चीनी-शक्कर, मीठे फल, मीठी चाय, मीठे पेय, मीठा दूध, चावल, आलू, सकरकंद, तले-चिकने पदार्थ, घी, मक्खन, सूखे मेवे, गरिष्ठ पदार्थ आदिका सेवन बंद कर दे। मीठा करने-हेतु चीनीके स्थानपर सेकरीनकी गोलीका प्रयोग कर सकते हैं। आहारमें बसा, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेटयुक्त पदार्थों, उदाहरणार्थ दूध, घी, तेल, सूखे मेवे, फल, अनाज, दाल आदिका भी कम मात्रा में प्रयोग करे। मांसाहार और शराबका प्रयोग कतई न करे। रेशायुक्त खाद्य पदार्थों जैसे हरी शाक-सब्जी, सलाद, आटेका चोकर, मौसमी फल, अंकुरित अन्न, समूची दाल आदिका सेवन अधिक मात्रा में करे। इस रोगसे ग्रस्त व्यक्ति केवल उचित संतुलित आहारका ही नहीं वरन् उचित विहार, रहन-सहनको नियमित तथा नियन्त्रित करनेका भी ध्यान रखे और तदनुसार अपनी दिनचर्या में वाञ्छित सुधार करे। दिनचर्या में वायुसेवन-हेतु सूर्योदयसे पूर्व भ्रमणके लिये जाना, तेल-मालिश, योगासन, व्यायाम करना, दिनमें चल-फिरकर रहना हितकारी होता है। योगासनोंमें सूर्य नमस्कार, भुजङ्गासन, शलभासन, योगमुद्रा, धनुरासन, सर्वाङ्गासनादि और अन्तमें शवासन करे। योगासन-व्यायामका अभ्यास अधिक मात्रा में न करके अपनी शारीरिक क्षमताके अनुसार ही करे।

मधुमेहके लक्षण और स्वमूत्र तथा रक्तमें शर्करा होनेपर व्यक्तिको चाहिये कि वह चिन्तित एवं भयभीत न हो, बल्कि चिन्ताजनक तथा भयकारक इस समस्याका उचित समाधान सोचकर इसे नष्ट करनेका प्रयत्न करे। जो आहार-विहारकी गलतियाँ करते रहते हैं, वे जीवनपर्यन्त रोगसे ग्रस्त हो अपनी करनीका फल भोगते रहते हैं और जिन पदार्थोंको खानेमें अति की थी, उन्हींको खानेके लिये तरसा करते हैं तथा साथ ही बोनसके रूपमें अन्य बीमारियाँ भी उनके पल्ले पड़ जाती हैं, जिन्हें उन्हें भोगना ही पड़ता है। अतः रोगीको पथ्यका पालन और अपथ्यका त्याग करना अपेक्षित है।

**घरेलू उपचार एवं चिकित्सा—** उचित आहार-विहारका

ध्यान रखते हुए मधुमेहसे ग्रस्त व्यक्ति निम्नाङ्कित घरेलू उपचारोंमेंसे किसीका प्रयोग कर इस रोगपर नियन्त्रण कर सकता है—

(१) मेथीदाना ५०० ग्राम धो-साफकर १२ घंटेतक पानीमें भिगोकर बीज फूलनेपर इन्हें पानीसे निकाल करके सुखा ले और कूट-पीसकर महीन चूर्ण कर ले। इस चूर्णको सुबह-शाम एक-एक चम्मच पानीके साथ सेवन करनेसे मधुमेहके रोगीको लाभ होता है।

(२) आधा चम्मच पिसी हल्दी और एक चम्मच आँवलाका चूर्ण सुबह-शाम पानीके साथ लेनेसे रक्त शर्करा सामान्य मात्रामें बनी रहती है, क्योंकि इसके सेवनसे अग्न्याशयको बल मिलता है, जिससे इन्सुलिन नामक हार्मोन उचित मात्रामें बनता रहता है। यदि स्वस्थ व्यक्ति इसका सेवन करे तो वह इस व्याधिसे बचा रह सकता है।

(३) ढाक (पलाश)-के फूलोंका रस आधा-आधा चम्मच सुबह-शाम पीना मधुमेहसे ग्रस्त रोगीके लिये लाभप्रद रहता है।

(४) बेलके ताजे हरे पत्तोंका रस दो-दो चम्मच सुबह-शाम पीना मधुमेहके रोगमें बहुत गुणकारी और उत्तम है।

(५) गुड़मार ८० ग्राम, बिनोलेकी मींगी ४० ग्राम, बेलके सूखे पत्ते ६० ग्राम, जामुनकी गुठली ४० ग्राम और नीमकी सूखी पत्तियाँ २० ग्रामको कूट-पीसकर मिलाकर चूर्ण बना ले और उसका सुबह-शाम आधा-आधा चम्मच प्रयोग करे। इससे अग्न्याशय और यकृतको बल मिलनेसे उनके विकार नष्ट होते हैं और मूत्र तथा रक्तकी शर्करा नियन्त्रित हो सामान्य मात्रामें रहती है।

(६) आयुर्वेदिक औषधि वसन्तकुसुमाकर रस अथवा अम्बरयुक्त शिलाजत्वादि वटी और प्रमेहगज केसरीवटी—इन दोनोंकी एक-एक गोली सुबह-शाम दूधके साथ ले। आयुर्वेदिक औषधियोंसे तैयार मिश्रणका प्रयोग मधुमेहके रोगमें विशेष लाभकारी रहता है।

(७) मिट्टीके वरतनमें रातको ५० ग्राम मेथीदाना पानीमें भिगोये और सुबह मसल-छानकर इस पानीको पीये। इसी प्रकार सुबहका भिगोया मेथीदाना शामको मसल-छानकर पीये। सुबह नाश्तेमें रातको पानीमें भिगोयी हुई मूँग और मोठ इच्छानुसार ले और उसे खूब चबा-चबाकर खाये। इस भीगी मूँग-मोठको सुबह तवेपर थोड़ा

तेल, नमक तथा जीरा डालकर सेंक ले। इनके साथ 'जाम्बुलिन' की दो गोलियाँ मेथी-पानीके साथ निगलना विशेषरूपसे हितकारी होता है।

(८) मधुमेहमें सुबह-शाम भोजनके बाद आधे कप पानीके साथ जामुनकी गुठली और करेलेका चूर्ण ५-५ ग्राम फाँक लेना तथा दिनमें एक बार १५-२० बेलपत्र खूब चबा-चबाकर महीन करके खाना सफल घरेलू इलाज है।

(९) मधुमेहकी चिकित्सा-हेतु अंग्रेजी दवाइयोंके अतिरिक्त अनेक गुणकारी आयुर्वेदिक औषधियाँ हैं, जो रक्तगत शर्कराको सफलतापूर्वक नियन्त्रित करती हैं। कुछ प्रमुख योग हैं—मधुमेहारिचूर्ण, मधुहारी चूर्ण, मधुनाश, मधुदोषान्तक, डेबिक्स टेबलेट, मधुरीन, पिल्स तथा पाउडर, मधुमेहदमन चूर्ण आदि।

आधुनिक चिकित्सा-विज्ञानने मधुमेहग्रस्त रोगियोंपर अनेकानेक सुदीर्घ शोधानुसन्धान किये हैं, जिससे असाध्य मधुमेहके लिये अनेक अचूक, असरदार विशिष्ट औषधियाँ विकसित हुई हैं तथा आहार-सम्बन्धी मान्यताएँ प्रभावित हुई हैं। निःसंदेह उत्तम गुणवाली औषधियाँ मूत्र तथा रक्तकी शर्कराको नियन्त्रितकर इन्सुलिनके प्राकृतिक स्रावको सक्रिय करके शरीरमें इन्सुलिनकी कमी एवं वृद्धि दोनोंको सन्तुलित रखकर प्राणघातक दुष्परिणामोंसे रोगीकी रक्षा करनेमें बेहतरीन परिणाम प्रदान करती हैं। इन औषधियोंमें गुड़मार, करेला-बीज, नीम, आंव हल्दी, गिलोय, जामुन गुठली, गूलर-फल, शिलाजीत, बिल्वपत्र आदिकी मिश्रित जड़ी-बूटियाँ तथा त्रिवंगभस्मादि हैं, जो मधुमेहमें पैक्रियाजको सक्रिय करने और इन्सुलिन प्रदायको नियन्त्रित करनेमें गुणकारी तथा लाभकारी रहती हैं।

संक्षेपमें मधुमेहकी हर स्थितिमें आहार-नियन्त्रण, निदान-परिवर्जन, दिनचर्या-नियमनसे लाभान्वित होते हुए आप सम्पूर्ण जीवन निर्विघ्न जी सकते हैं। मधुमेहका रोगी किसी भी दृष्टिसे शारीरिक या मानसिक रूपसे अपंग नहीं होता है, बल्कि संयमित, नियमित एवं अनुशासित दिनचर्यासे वह जीवनके किसी भी लक्ष्यको प्राप्त करनेमें सक्षम है। प्रत्येक रोगीके लिये आहार-मात्रा, विहार-प्रक्रिया, दिनचर्या भिन्न-भिन्न हो सकती है। किंतु कुछ सामान्य बातें हैं, जिन्हें समझकर स्वविवेकसे उपयोगी आहार-विहार तय करके आप मधुमेहसे मुक्त रह सकते हैं।



## विबन्ध या कोष्ठबद्धता

( वैद्य श्रीजगदीशप्रसादजी खन्ना )

मेरे एक अध्यापक जो वियनामें पढ़ते थे, उन्होंने बताया कि उस देशके निवासी जो मेरे सहपाठी थे, वे शौचके लिये सप्ताहमें केवल एक बार जाते थे। वे लोग मेरे साथ रातमें शयन करते थे, परंतु मेरे प्रातःकाल उठनेके घंटोंबाद उठकर भी मुझसे पहले कक्षामें पहुँच जाते थे और मुझे प्रायः विलम्ब हो जाता था; क्योंकि प्रातःकालके शौचाचारादिमें समय लग जाता था। नित्य शौच जानेपर भी मैं उन लोगों-जितना स्वस्थ भी नहीं था। यह सही है कि वियना और वाराणसीकी भौगोलिक स्थिति एक-सी नहीं है और वहाँके निवासियोंके आहार-विहार यहाँसे भिन्न हैं, परंतु क्रब्जके सम्बन्धमें यह भी एक विचारणीय तथ्य है। उस देशकी परम्परा ही तदनुरूप है और उसी परम्पराके अनुसार वहाँके निवासियोंमें ऐसी मानसिकता है कि सप्ताहमें केवल एक बार शौच जाना ही सर्वोत्तम स्वास्थ्यका लक्षण है। वे इसी शौचविधिमें प्रसन्नचित्त हैं, स्वस्थ हैं और कुशलपूर्वक अपना जीवन निर्वाह करते हैं।

भारतमें लोगोंकी मानसिकता भिन्न है। वे नित्य दो बार या तीन बार शौच जाना ही उचित मानते हैं और यदि उनका मलत्याग नियमितरूपसे सम्पन्न नहीं होता है तो वे रेचक दवाका सेवन करते हैं।

इस सम्बन्धमें जनमानसकी यह धारणा है कि यदि नित्य नियमितरूपसे दो या तीन बार मलका त्याग न होगा तो उन्हें अनेक कष्ट होंगे, भोजनमें अरुचि होगी, शरीर सुस्त रहेगा, पेट भारी रहेगा आदि-आदि। कभी-कभी तो मनुष्यमें यह विचार भी उठने लगता है कि नियमित शौच न होनेके कारण ही उन्हें अमुक रोग सता रहा है और शौच हो जानेसे उनका रोग ठीक हो जायगा, यद्यपि यह बात कुछ अंशमें ठीक है। परंतु आयुर्वेदमें एक सूत्र है कि—

**मलायत्तं बलं पुंसां बलायत्तं हि जीवनम्।**

अर्थात् मलके आश्रित शरीरका बल है और बलके आधारपर जीवन स्थित है। यदि मल (पुरीष, मूत्र, स्वेद)-का क्षय होगा तो जीवन (जीवित रहनेका)-का क्षय होगा।

इन मुख्य तीन मलोंके धारणसे शरीर शक्तिशाली होता है और यदि इनके धारणकी शक्तिका नाश होगा तो जीवनका भी सद्यः नाश हो जायगा। यथा विषूचिका—हैजा (CHOLERA) -में सद्यः मृत्युका होना मलक्षय ही कारण है।

आयुर्वेदमें दूसरा सूत्र है कि—

**मलाभावाद् बलाभावो बलाभावादसुक्षयः।**

अर्थात् मलके क्षयसे बलका क्षय होगा और बलके क्षयसे प्राणका अन्त होगा।

**कारण—**क्रब्जका कारण पित्तकी विकृति है। पित्तकी उत्पत्तिकी मात्रा अल्प होनेसे भोजनका पाचन नहीं होता और भोजनके न पचनेपर भोजनमें आमत्व उत्पन्न होता है। आमयुक्त भोजनका उत्तम विश्लेषण नहीं होता और अविश्लेषित भोजन आँतोंमें चिपकता है, ग्रहणीकी शक्तिको क्षीण करता है, आँतोंकी सामान्य गतिके अवरुद्ध हो जानेसे विबन्ध उत्पन्न होता है।

पित्तकी मात्रामें अल्पताका कारण शरीरमें आलस्य या अरामतलबी है। आप जितना शारीरिक परिश्रम करेंगे, उसी अनुपातसे पित्तकी उत्पत्ति होगी। इस हेतु परिश्रम ऐसा होना चाहिये, जिसमें भरपूर पसीना आये और श्वास-प्रश्वास तेज हो। ऐसी क्रियासे रक्तकण (R.B.C) टूटते हैं और यकृतमें छनकर पित्तको बनाते हैं। यकृत (Liver) -में पित्तकी मात्रा अधिक होनेपर यह स्वाभाविकरूपसे यकृतसे बाहर आकर भोजनको उत्तम प्रकारसे पचाता है। साबुनके रूपमें बना यह उत्तम पदार्थ आँतोंको इस तरह निर्मल कर देता है जैसे साबुन कपड़ेको साफ करता है। अतः आँतोंके लिये पित्त ही उत्तम साबुन है। बचपनमें परिश्रमकी क्रिया अधिक होती है, अतः बचपनमें क्रब्ज कम होता है। यौवनावस्थामें परिश्रम कुछ शिथिल पड़ता है तो क्रब्ज ज्यादा होता है और वृद्धावस्थामें परिश्रम अत्यन्त शिथिल होता है अतः क्रब्ज बहुत अधिक होता है। जो व्यक्ति इस तथ्यको समझकर सामर्थ्यानुसार परिश्रम करते रहते हैं उनका जीवन सुखी रहता है।

परिश्रमके अतिरिक्त खट्टे भोज्य पदार्थ, सेंधा नमक और मिरचा, काली मिर्च यदि भोजनके साथ लिया जाय तो परिश्रमके गुणमें सोनेमें सुगन्ध-जैसा लाभदायक होता है। कटु, अम्ल और लवणको आप्रेय कहा गया है।

क्रब्जके अन्य कारणोंमें कई रोग भी हैं। ज्वरकी अवस्थामें पाचनक्रियाका ह्रास होता है, अतः आँतोंमें स्थित भोजन सूख कर क्रब्ज पैदा करता है। पित्ताशय और पित्तवाहिनी शोथ (Holits, Holangitis), पाण्डु (Analmia), कामला (Jaundice) आदि यकृतके रोगोंमें उग्र प्रकारका विबन्ध होता है। आन्त्रकृमि (Worms) और रक्तचापवृद्धि (High blood presure) आदिमें भी क्रब्ज होता है।

पाचनसंस्थानमें मुखसे प्रारम्भ कर क्रमशः पेट, ग्रहणी, छोटी आँत, बड़ी आँत, मलाशय या गुदा आदिमें विकृतिके कारण उन अङ्गोंके स्त्रावमें हास होता है तो भी क्लृप्त् उत्पन्न होता है।

**क्रब्जके लक्षण**—यदि एक दिन-रात बीतनेपर मलत्यागका वेग न हो तो उसे क्रब्ज कहा जा सकता है। इसके साथ अन्नमें अरुचि, उदरमें भारीपन, बार-बार अपानवायुका निकलना, मूत्रत्यागका बार-बार वेग होना इत्यादि क्रब्जके लक्षण हैं। क्रब्जके कारण मनमें मलिनता रहती है। साहस तथा उत्साह नहीं होता। आलस्य होता है।

**निवारण—**(१) सर्वप्रथम पाचनसंस्थानके प्रत्येक अङ्गपर ध्यान देना चाहिये। मुखमें दाँत स्वस्थ हैं और भोजनकी चर्वणक्रिया सामान्य है या नहीं। भोजनके उचित चर्वणसे भोजनमें लालास्रावका पर्याप्त मिश्रण होता है तो क्रब्ज नहीं होता। पर्याप्त चर्वण करनेसे भोजनमें लालास्रावकी क्षारीयता भोजनको जलीय घोलमें परिणत कर देती है और भोजन फलके रसके समान स्वादिष्ट तथा सुपाच्य हो जाता है। क्रब्ज दूर करनेके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है। पुनः आमाशयपर ध्यान देना चाहिये। भोजन आमाशयमें पाँच या छः घंटेमें पचता है। इस अवधिमें प्यास लगनेपर शुद्ध पेय जलको उबालकर गुनगुना पीना चाहिये। इसके अतिरिक्त छः घंटेतक कोई भी वस्तु कदापि नहीं खानी चाहिये। पान, चाय आदि भी क्रब्ज पैदा करते हैं। उदाहरणार्थ—आपने एक पात्रमें दाल पकानेको दालमें जल मिलाकर आगपर

रखा। दाल पकनेमें लगभग दो घंटे समय लगते हैं, परंतु यदि पकती हुई उस दालके पात्रमें हर १५ मिनटपर बार-बार थोड़ी-थोड़ी दाल डालते जायँगे तो पहलेकी दालके साथ मिलकर बार-बार डाली गयी दाल पहली दालको न पकने देगी और न आप पकेगी। पाक भ्रष्ट हो जायगा। उसी प्रकार पेट भी एक पात्र है, उसमें एक बार पकनेको रखे भोजनमें पाँच या छः घंटेके बीच जलके अतिरिक्त अन्य कुछ भी डालनेसे क्रब्ज होगा। आमतत्व उत्पन्न होगा और पाक बिगड़ जायगा। अस्तु भोजन खूब चबा-चबाकर करना चाहिये और भोजनके बाद थोड़ी देर विश्राम करना चाहिये। लगभग छः घंटेतक उबले जलके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं लेना चाहिये। भोजनके पच जानेपर सामान्यतः सात या आठ घंटे बाद दूसरी बार भोजन करना चाहिये। भोजनके उपरान्त दिनमें शयन करना अनुचित है। इससे जुकाम-नजला होनेका डर रहता है। भोजनके बाद दिनमें आरामसे टहलते-घूमते अपना कार्य करनेवालेकी आयु लम्बी और रोगरहित होती है। रात्रिभोजन करनेके बाद प्रायः दो-तीन घण्टेतक शयन नहीं करना चाहिये। इस बीच टहलना-घूमना सर्वोत्तम है अथवा अपनी रुचिके अनुसार सद्ग्रन्थोंका अध्ययन करना चाहिये। रात्रिमें शयनकाल छः या सात घंटे होना चाहिये और प्रातःकाल सूर्योदयसे पूर्व आसमानमें उषःकिरणोंके फैलते समय घरसे बाहर शुद्ध वायुवाले खुले मैदानमें टहलना चाहिये। ऐसी मान्यता है कि प्रातःकाल शौचादिसे निवृत्त होकर सूर्योदयसे पूर्व एक घंटातक अपनी शक्तिके अनुसार तेजीसे खुली हवामें उत्तम पवित्र स्थान यथा—नदीतट, उत्तम राजमार्ग या विस्तृत उपवन आदिमें टहलनेसे विबन्ध दूर होता है।

२. ऋब्जमें लाभके लिये उषःपान करना चाहिये। व्यक्तिकी अपनी प्रकृतिके अनुसार अनुकूल पड़े तो यह भी ऋब्जको दूर करता है। ताम्रपात्रमें रखा हुआ रात्रिका जल उषःकालमें इच्छानुसार शयनसे उठते ही शौचादिसे पूर्व लेनेकी विधि है।

३. विबन्धका एक बड़ा कारण अजीर्ण है। अतः खूब जोरकी भूख लगनेपर ही भोजन करना चाहिये और तृप्तिसे पूर्व ही भोजन समाप्त करना चाहिये।

इस दृष्टिसे कब्जके रोगीको एक-दो या तीन दिनतक नित्य रात्रिमें एक (टेबल स्पून) चम्मच उत्तम एरण्डका तेल (रेडीका तेल) थोड़े गरम दूधमें मिलाकर शयनके पूर्व लेकर शयन करना चाहिये। रात्रिमें जब जोरकी नींद आने लगे तब पीकर सोना चाहिये और कोष्ठ शुद्ध होनेपर विरेचनका प्रयोग करना चाहिये।

**एक उत्तम योग**—बैतरा सोंठ, छोटी पिप्पली, हल्दी, वायविडंग, वच, छोटी हरड़ प्रत्येकका समभाग लेकर चूर्ण बना ले। चूर्णका १/६ भाग नमक और सभी छः द्रव्योंके समान उत्तम गुड़ मिलाकर गोली बनावे और एक आँवलाकी मात्रामें शयनसे पूर्व नित्य रात्रिमें तीन दिन, पाँच दिन या सात दिनतक लेना चाहिये। दिनमें उत्तम यवसे निर्मित खाद्यका भोजन (एक बार) करना चाहिये। (च०चि० १)

अथवा हरे आँवले और मूँगके साथ जल और अल्पस्नेहसे पकाये हुए बिना नमकवाले भात (चावल) -को घृत मिलाकर दिनमें एक बार भोजन करना चाहिये। (सु० चि० २७)

**अन्य योग—**वर्तमान समयमें अगणित दस्तावर दवाइयोंका प्रचार किया जा रहा है, परंतु बिना समझे, प्रचारके आधारपर इनका प्रयोग हानिकर पाया जा रहा है। अस्तु, किसी भी दस्तावर दवाका प्रयोग प्रचारके आधारपर कदापि नहीं करना चाहिये, प्रत्युत किसी विद्वान् एवं

अनुभवी चिकित्सकके परामर्शके अनुसार करना चाहिये। कुछ निरापद्रव्योंमें ईसबगोलकी भूसी, चैती गुलाबकी पत्ती, अमलतास वृक्षके फूल, आँवलेका मधुर पाक, घृतकुमारीका गूदा, घीमें तली छोटी हरें, रेड़ीके तेलमें तली छोटी हरड़े, मुनक्का, गरम पानी आदि हैं। महर्षि सुश्रुतकी निम्न उक्ति अक्षरशः सत्य प्रतीत होती है—

दीप्तान्तराग्निः                      परिशुद्धकोष्ठः

प्रत्यग्रधातुर्बलवर्णयुक्तः

दृढेन्द्रियो      मन्दजरः      शतायुः

स्नेहोपसेवी      पुरुषो      भवेत्तु ॥

(सु०चि० ३१।५६)

अर्थात् स्नेहद्रव्योंका नित्य सेवन करनेवाले पुरुषकी जठराग्नि प्रबल रहती है, कोष्ठ शुद्ध रहता है, रसादि धातु, बल, वर्ण सदा नूतन रहते हैं, इन्द्रियाँ दृढ़ रहती हैं, बुढ़ापा देरमें आता है और आयु सौ सालकी होती है।



## रोगोंसे मुक्तिका उपाय—विपश्यना

( डॉ० श्रीप्रेमनारायणजी सोमानी भू०पू० निदेशक चिकित्सा विज्ञान संस्थान काशी हि०वि० विद्यालय, वाराणसी )

शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये तो हम शारीरिक व्यायाम करते हैं, परंतु मनको स्वस्थ रखनेके लिये कुछ नहीं करते। हमारा मन जब प्रदुष्ट होता है तो मनोरोग उत्पन्न होते हैं। मनको सर्वविध स्वस्थ और मनोविकारोंसे स्थायी रूपसे विरत रखनेकी कुंजी है—‘**विपश्यना**’, जिसकी जड़ें तो भारतकी हैं, पर यह विद्या विदेशोंमें पल्लवित एवं पृष्पित होती रही है।

**‘विपश्यना’** ध्यान आध्यात्मिक साधनाकी एक विधि है, जो मनुष्यके आचरणको सुधारकर उसको स्वस्थ जीवन जीनेकी कला सिखाती है। प्राचीन युगमें ऋषि-मुनियोंने आध्यात्मिक स्वास्थ्यकी दृष्टिसे जिस सात्त्विक जीवनपर बल दिया, वह सब कुछ विपश्यनासे सहज सुलभ है। नयी पीढ़ीमें कुछ मिथ्या धारणा बन गयी है कि ऐसी आध्यात्मिकताकी ओर केवल वे बूढ़े व्यक्ति अग्रसर होते हैं, जिन्हें समय बिताना कठिन होता है। जवानीमें ये सब बातें निरर्थक लगती हैं। अभी तो मनोरंजन, कमाई और समाजमें स्थापित होनेके दिन हैं। मृत्यु परम सत्य होते हुए

भी बड़ी दूर दिखायी देती है। कोई मरना नहीं चाहता, उसके विषयमें सोचना भी नहीं चाहता। उसके विषयमें न सोचनेके तरह-तरहके उपाय खोजता है, ताकि उसे भूला रहा जा सके। फिर जब व्याधियाँ—बीमारियाँ शरीरपर दस्तक देने लगती हैं और सारी चिकित्सा-पद्धतियाँ उसे दूर करनेमें नाकामयाब रहती हैं। मृत्यु साक्षात् सिरपर खड़ी दिखायी देती है, तब जीनेकी लालसा और बढ़ती है। तब वह रहस्यमयी आध्यात्मिक शक्तियों और क्रियाओंकी खोज करता है। शायद उससे कोई राहत मिले—दवाइयोंसे छुटकारा मिले।

प्रश्न उठता है कि आध्यात्मिक साधना क्या रोगोंको ठीक करनेमें मदद करती है? प्राकृतिक चिकित्साकी मान्यता है कि ईर्ष्या-द्वेषके बाहुल्यसे तनाव बढ़ता है और मनुष्यमें बुढ़ापेके लक्षण कम उम्रमें ही आ जाते हैं। क्रोध तनावका कारण है और कुण्ठाका सम्बन्ध 'हार्ट-अटैक' एवं ब्लडप्रेषर या पेप्टिक अल्सर (गैस्ट्रिक)-जैसी बीमारियोंसे है। ब्लडप्रेषर कालान्तरमें फालिजका कारण बनता है। भय

साँसमें एकाग्रता हमारे बाह्यचित्त (Conscious mind) - को शुद्ध करती है। इसके बावजूद विकारोंकी जड़ें नहीं निकल पातीं। इनकी जड़ें हमारे अन्तश्चित्त (Unconscious mind)-में हैं जो शरीरमें होनेवाली रासायनिक, विद्युतीय एवं चुम्बकीय क्रियाओंको बराबर जानती रहती हैं और अंधी प्रतिक्रिया करती हैं। समय और परिस्थितियाँ आनेपर विकार फिर सिर उठाने लगते हैं। यही हमारा स्वभाव होता है। यह अंधी प्रतिक्रिया ही हमारे सारे विकारोंकी जड़ है। हम शरीरपर होनेवाली इन भिन्न जैव रासायनिक क्रियाओंको संवेदनाके माध्यमसे जानते हैं। संवेदना सदैव होती रहती है। जब भी चित्त एकाग्र होकर शरीरके किसी भागसे सम्पर्क करता है—अनुभव करता है तो संवेदनाएँ महसूस होने लगती हैं। यदि हम संवेदनाओंके प्रति सजग नहीं हैं तो अंधेरेमें ही हैं। सुखद संवेदना हो तो उसे कायम रखने अथवा बढ़ानेकी प्रतिक्रिया और यदि दुःखद संवेदना हो तो उसे तुरंत दूर करनेकी प्रतिक्रिया और यदि असुखद-अदुःखद संवेदना हो तो उससे ऊँचकर उसे दूर करनेके



लिये द्वेषकी और किसी सुखद संवेदनाको प्राप्त करनेके लिये रागकी प्रतिक्रिया करते हैं। जब हम यह प्रज्ञा (बुद्धि)-पूर्वक जानने लगें, तो भोक्ता-भावकी जगह साक्षी-भाव जाग्रत् होगा। भोक्ता-भाव अपने-आप चला जायगा। यह देखा गया है कि जब साक्षी-भाव आ रहा है तो शरीरकी कोशिकाओंमें, आसवोंमें भी परिवर्तन होता है। इसी प्रक्रियासे विकारोंकी जड़ें निकलने लगती हैं और हमें मनोजन्य शारीरिक एवं मानसिक रोगोंसे छुटकारा मिलने लगता है। नशेके शिकार व्यक्तियोंमें देखा गया है कि वे नशेका सेवन इसलिये करते हैं कि शरीरमें एक प्रकारकी संवेदनाकी चाह होती है। यही 'तलब' या आवश्यकता कहलाती है। यह तलब नशेके प्रभावसे शरीरकी कोशिकाओंमें पैदा हुए द्रव्य रसायनसे होती है, जो संवेदनाके रूपमें शरीरपर प्रकट होती है। यदि 'तलब' को साक्षी-भावसे देखें और कोई प्रतिक्रिया न करें तो नशेकी आदत ही छूट

जाती है। 'विपश्यना' का प्रयोग पश्चिमी आस्ट्रेलियामें क्रेयन हाउसमें नशेसे छुटकारेके लिये बड़ी सफलतापूर्वक किया जा रहा है। इसके सारे सलाहकार वे भूतपूर्व नशेकी आदतवाले हैं जो विपश्यनाद्वारा नशेकी आदत छोड़ चुके हैं और अब ये नशा करनेवालोंके सम्मुख स्वयं आदर्श प्रस्तुत करते हुए उनकी आदत छुड़ानेमें उनकी मदद करते हैं।

'विपश्यना' द्वारा मन निर्मल और शान्त होता है तो मनमें सकारात्मक प्रतिक्रिया ही जागती है और ये प्रवृत्तियाँ असाध्य रोगोंके प्रति साक्षी-भाव जगाती हैं, जिससे रोगोंसे होनेवाली पीडा कम होती है। रोगोंको बर्दाश्त करनेकी क्षमता बढ़ती है और चेहरेपर शान्ति एवं मुस्कुराहट ही रहती है। रोगोंपर विजय तो इस साधनाका ब्याज ही है, असल तो भव-चक्रसे मुक्ति है। हम जिस किसी भी मानसिकतासे इसकी ओर बढ़ें, लाभ-ही-लाभ है।



## विपश्यना-पद्धति

ध्यान चेतनाकी वह अवस्था है, जिसमें विचारोंका सामञ्जस्य स्थापित होकर समस्त अनुभूतियाँ एक ही अनुभूतिमें विलीन हो जाती हैं। ध्यानकी चरमावस्थामें सभी भेद समाप्त हो जाते हैं। संकुचित सीमित आत्मा परमात्मामें कुछ समयके लिये विलीन हो जाता है। ध्यानकी जितनी आवश्यकता आध्यात्मिक जीवनमें है उतनी ही लौकिक जीवनमें भी। शक्तिका प्रयोग अच्छी या बुरी किसी भी दिशामें किया जा सकता है। इसीलिये ध्यानको अध्यात्मके साथ जोड़ना अधिक सार्थक है।

यह मन विचारोंके विशद जालमें अनवरत उलझा रहता है। यहाँतक कि सोते समय स्वप्नमें भी मन विचारोंके जंजालमें भटकता रहता है। मनकी शक्ति निरर्थक विचारोंसे क्षीण होती है। अच्छे विचारोंसे मनकी शक्ति बढ़ती है तथा सुख और शान्तिकी अनुभूति बढ़ती है। आशा, निराशा, उत्तेजना, हर्ष-शोक, मोह, लोभ, राग-द्वेषके विचार सदैव चलते रहते हैं। मनकी ये सब वृत्तियाँ क्लेशकारक हैं। मनकी इन क्लेशकारक वृत्तियोंको ध्यानके द्वारा नियन्त्रित किया जा सकता है। ध्यानके अभ्याससे हम अपनी संकुचित परिधियोंसे ऊपर उठ सकते हैं, ध्यानके अभ्याससे मनकी दुर्बलता दूर हो जाती है। परमात्मशक्तिका ध्यान शक्तिके अनन्त स्रोतकी

ओर तो अग्रसर करता ही है, प्रबल मानसिक एकाग्रता भी प्राप्त होती है जिससे अनेक कठिन कार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं। मनके निरर्थक क्रियाकलापोंको नियन्त्रित करके नष्ट कर देना चाहिये। तामसिक, राजसिक वृत्तियोंका नियमन हो जानेपर सात्त्विक वृत्तियाँ दृढ़ होंगी। सभी व्यक्तियोंका मानसिक स्तर एक-सा नहीं होता। मानसिक स्तर तथा साधनामें लगनके अनुसार सफलता प्राप्त होती है।

ध्यानकी विविध पद्धतियोंमेंसे एक विपश्यना-पद्धति भी है। इसका मुख्य भाव है—सतत जागरूक रहकर मनकी गतिविधियोंका अवलोकन करना। अप्रमादसे अभ्यास करते रहनेपर धीरे-धीरे साधककी अन्तर्दृष्टि खुल जाती है। अपार शान्ति प्राप्त होती है। यह सद्यः फलदायक है। इसका अभ्यास करके निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है। मनकी शुद्धिके लिये, दुःखों—कष्टोंसे छुटकारा पानेके लिये, मनकी चञ्चलताका नियमन करके मोक्षप्राप्तिकी अनूठी पद्धति है—विपश्यना-भावनाका सतत अभ्यास।

### ध्यानकी विधि

श्वास लेते समय उदरके उठने तथा गिरनेके रूपमें गति होती है। प्रारम्भमें इन गतियोंपर ध्यान देनेका अभ्यास करना चाहिये। अपना ध्यान श्वास-प्रश्वासपर ले जाय। श्वास लेनेसे

पेट ऊपरकी ओर उठता है और छोड़ते समय नीचे बैठता है। यदि आरम्भमें उठने और गिरनेकी प्रक्रियाका ठीक-ठीक यथावत् आभास न मिल सके तो पेटपर एक हाथ या दोनों हाथ रखनेसे यह क्रिया स्पष्ट हो जायगी कि श्वास लेनेसे पेट उठता है और श्वास छोड़ देनेसे पेट गिरता है। अब पेटके उठने और गिरनेपर ध्यानको केन्द्रित करें। साधकके लिये ध्यानमें स्मृति, समाधि और ज्ञानको उद्बुद्ध करनेके लिये यह अत्यन्त सरल और परम सहायक क्रिया है। जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता जायगा, श्वास-प्रश्वासके आने-जाने अथवा पेटके उठने-गिरनेका अभ्यास सहज हो जायगा।

विषयनाका अभ्यास जैसे-जैसे बढ़ता जायगा वैसे-वैसे मनके प्रत्येक भावोंको आप ठीक-ठीक पकड़ सकेंगे। आरम्भमें जबकि स्मृति और समाधि अभी अपरिपक्व है, मनके प्रत्येक भाव तत्काल-ही-तत्काल पकड़ पाना कठिन प्रतीत होगा। आरम्भमें तो समझमें नहीं आयेगा कि इन्द्रियद्वारोंपर सजग और सावधान रहकर, अप्रमत्त रहकर भावोंको कैसे पकड़ा जाय, परन्तु श्वास-प्रश्वासके आने-जानेकी क्रिया तो स्वयमेव निरन्तर चल ही रही है, उसे खोजनेके लिये कहीं बाहर भटकना नहीं है। अतएव सुस्थिर चित्तसे श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेकी प्रक्रियापर ध्यान रखे और खूब गहराईसे—ध्यानसे देखता रहे। हाँ, आने-जाने या उठने-गिरनेपर ध्यान तो रहे, परन्तु इन शब्दोंको मुखसे उच्चारण करनेकी आवश्यकता नहीं है। श्वास-प्रश्वासकी या पेटके उठने और गिरनेकी क्रियाको अधिक जाग्रत् या बलवती बनानेके लिये जोर-जोरसे श्वास लेनेकी जरा भी आवश्यकता नहीं है। जोर-जोरसे जल्दी-जल्दी श्वास लेनेपर तुरन्त थकावट आ जायगी। इसलिये आवश्यक है कि साधक सहज रूपमें ही श्वास-प्रश्वासकी छन्दमय गति या पेटके उठने और गिरनेपर ध्यान रखे।

इस प्रकार जब श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर अपना ध्यान जमाये हुए हैं, यह सर्वथा स्वाभाविक ही है कि मन सङ्कल्प, संस्कार, इच्छाएँ, विचार, कल्पनाओंकी भीड़ लगा दे। इन मानसिक क्रियाओंकी अवहेलना नहीं की जा सकती। वे जैसे ही आयें तुरन्त उसी क्षण उन्हें अवलोकित कर लेना चाहिये, मन-ही-मन उन्हें देख लेना चाहिये। बस, देखनेमात्रसे वे ढह या गल जायँगी, बशर्ते कि उनमें उलझे नहीं। सतत जागरूकता और सावधानी ही इस साधनाका प्राण है। मनपर ज्यों ही ध्यान दिया जाता है, प्रायः यह लुप्त हो जाता है।

यदि आप भावनामें बैठे हुए हैं और श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान लगाये हुए हैं, उसी समय कोई 'कल्पना' आयी, तत्काल मन-ही-मन 'कल्पना आयी, कल्पना आयी' देखें, कोई 'विचार' आया तो मन-ही-मन 'विचार आया, विचार आया' ध्यान करें, यदि 'चिन्तन' आया तो मन-ही-मन ध्यान करें, 'चिन्तन आया, चिन्तन आया', कोई इच्छा जगी तो मन-ही-मन ध्यान करें, 'इच्छा जगी, इच्छा जगी', किसी प्रश्नकी गुल्थी समझमें आते ही 'समझमें आयी, समझमें आयी', मन-ही-मन अवलोकन करें, उनमें उलझें नहीं। मैं विचार कर रहा हूँ, मैं कल्पना कर रहा हूँ, मैं इच्छा कर रहा हूँ—ऐसा नहीं। उसमें अपने 'मैं' को मत सानिये। मेरी कल्पना, मेरा विचार, मेरी इच्छा, मेरी समझ—ऐसा भी नहीं। 'मैं' और 'मेरा' इस प्रक्रियामें उलझें नहीं, फँसे नहीं। तटस्थ होकर आनेवाले विचार, कल्पना, इच्छा, सङ्कल्पको देखते रहें और मन-ही-मन उनके आनेका ध्यान करते रहें। ध्यान करते ही वे या तो ढहकर या गलकर स्वयमेव गायब हो जायँगे और आप अपने साधन-पथपर निश्चिन्त निरापद बेखटके बढ़ते जायँगे। चिन्तनमें धैर्यकी बहुत आवश्यकता पड़ती है। यदि कोई धैर्यपूर्वक अनुभूतियोंको सहन नहीं कर सकता और बार-बार अपनी मुद्राको बदलता रहता है तो समाधि-प्राप्तिकी आशा नहीं की जा सकती।

चूँकि एक ही आसनसे देरतक ध्यानमें बैठना होता है, यह सम्भव है कि शरीरमें थकानका या अङ्गोंमें 'जकड़नका अनुभव हो। ऐसी अवस्थामें जहाँ थकानका बोध हो रहा है वहाँ ध्यान ले जाकर 'थका, थका' या 'जकड़न, जकड़न' का ध्यान करे—स्वाभाविक रूपमें न तो बहुत धीरे-धीरे, न झटकेमें। ऐसा करते ही थकान या जकड़नका भाव स्वयं ही धीरे-धीरे गायब हो जायगा। ऐसा भी हो सकता है कि वह थकान या जकड़न बढ़ जाय। ऐसी अवस्थामें साधक चाहने लगता है कि आसन बदल दिया जाय और तब उसे मन-ही-मन अवलोकन करना चाहिये 'चाह रहा हूँ, चाह रहा हूँ' और तब अपना आसन धीरे-धीरे साथ ही प्रत्येक स्थितिका क्रमशः अवलोकन करते हुए शनैः-शनैः बदलना चाहिये। धीरे-धीरे प्रत्येक स्थितिकी बारीक-से-बारीक बातका अवलोकन करना चाहिये। जब अपना आसन बदलकर सुस्थिर बैठना हो तो पुनः श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान जमा दें। यदि शरीरमें कहीं गर्मीका बोध हो रहा हो तो उस स्थानपर 'गरम, गरम' का ध्यान करते ही गर्मी समाप्त

नींदमें किसी प्रकारका चिन्तन या ध्यान सम्भव नहीं है। जागते ही जागनेके प्रथम क्षणसे स्मृतिका अभ्यास शुरू कर दे—‘जाग रहा हूँ, जाग रहा हूँ’। आरम्भमें स्मृतिका अभ्यास करना कठिन होगा—जिस क्षण उसे याद आ जाय तभीसे शुरू कर दे। उदाहरणके लिये जिस क्षण चिन्तनका ध्यान आये, ‘चिन्तन कर रहा हूँ, चिन्तन कर रहा हूँ’ और फिर वह श्वास आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान टिका दे। आरम्भमें कई बातें छूट जायँगी, परंतु इससे विचलित नहीं होना चाहिये। अपने उद्देश्यकी सिद्धिमें, अभ्यासमें पूर्णतः तत्पर रहना चाहिये। जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता जायगा, छूट कम होती जायगी और आगे

बढ़नेपर अधिक विस्तारमें ध्यान करते रहें।

एक व्यक्ति ज्यों ही कोई ध्वनि सुनता है तो मुड़कर उस दिशामें देखता है जहाँसे ध्वनि आ रही है। यह धीर व्यक्तिके समान व्यवहार नहीं है। एक बहरा व्यक्ति शान्त ढंगसे व्यवहार करता है। वह किसी बातचीतपर ध्यान नहीं देता; क्योंकि वह उन्हें सुनता नहीं। इसी तरह किसी भी अनावश्यक बातचीतपर ध्यान नहीं देना चाहिये, न तो किसी बातचीतको जानबूझकर मन लगाकर सुनना चाहिये। यह ध्यान रखना चाहिये कि एकाग्रचित्त होकर चिन्तन करना ही एकमात्र कर्तव्य है। देखी-सुनी जानेवाली दूसरी वस्तुओंसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। उनपर ध्यान नहीं देना चाहिये। जब कोई दृश्य दीख जाय तो उसे तुच्छ समझकर टाल जाना चाहिये।

### ध्यानमें प्रगति

एक दिन और एक रात इस अभ्यासको कर लेनेके अनन्तर यह अनुभव होगा कि ध्यान विशेष प्रगाढ़ और सघन होता जा रहा है तथा श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान आसानीसे केन्द्रित रह सकता है। यदि बैठनेकी स्थितिमें है तो पेटके उठने-गिरने और अपने बैठनेका भी मन-ही-मन ध्यान करते रहें—उठा, गिरा, बैठा, उठा, गिरा, बैठा। यदि वह लेटे हुए है तो मन-ही-मन ध्यान करे—उठा, गिरा, सोया, उठा, गिरा, सोया। यदि वह इन तीन बिन्दुओंपर एक साथ मनको एकाग्र करनेमें कठिनाईका अनुभव करे तो श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ही ध्यान टिकाये।

जब अपने शरीरकी किसी क्रियापर ध्यान लगाये हुए हैं तो सुनने या देखनेकी क्रियामें संलग्न नहीं होना है। श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर जब ध्यान है और उसी समय कहीं कोई दृश्य देखनेकी ओर दृष्टि चली गयी तो तुरंत ध्यान करना चाहिये 'देख रहा हूँ, देख रहा हूँ' और फिर उसे श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान टिका देना चाहिये। यदि कोई व्यक्ति दृष्टिपथमें आ जाय तो 'देख रहा हूँ, देख रहा हूँ', का दो-तीन बार ध्यान कर ले, फिर श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान टिका ले। यदि कोई ध्वनि या शब्द सुनायी दे तो 'सुन रहा हूँ, सुन रहा हूँ', का दो-तीन बार ध्यान कर ले और तब श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-

गिरनेपर ध्यान टिका ले। यदि जोरकी ध्वनि जैसे—कुत्तेके भौंकने, जोर-जोरसे बोलने, जोर-जोरसे गानेकी ध्वनि सुनता है तो 'सुन रहा हूँ, सुन रहा हूँ', दो या तीन बार ध्यान कर ले और तब अपने ध्यानको श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर जमा ले। यदि उन शब्दोंको सुननेमें लग जायेंगे तो सम्भव है कि उन-उन वस्तुओंमें उलझ जायें और तब फिर श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान न जम सके। इसी प्रकार मनको क्षुब्ध करनेवाले विकार जन्मते और बढ़ते हैं। यदि ऐसे विचार आवें तो तुरंत दो-तीन बार ध्यान करे—विचार कर रहा हूँ, विचार कर रहा हूँ और फिर श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान टिकाये।

इस प्रशिक्षणमें कुछ समय लगा चुकनेपर मनमें ऐसा भाव उठ सकता है कि यथेष्ट उन्नति नहीं हो रही है और सुस्तीका भाव आ सकता है। ऐसे समय 'सुस्ती, सुस्ती' की भावना करे। इतना ही नहीं, स्मृति, समाधि और ज्ञानमें पर्याप्त उन्नति उपलब्ध करनेके पूर्व मनमें इस ध्यानप्रक्रियाकी सच्चाईके बारेमें भी संदेह उठ सकता है। ऐसी स्थितिमें मन-ही-मन भावना करें—'संदेहमय, संदेहमय', कभी-कभी उत्तम परिणामकी आशा-अपेक्षा भी होगी। ऐसे समय 'आशा कर रहा हूँ, आशा कर रहा हूँ' की भावना करे। कभी-कभी साधनाकी सफलतापर हर्ष और प्रसन्नताका अनुभव होगा, ऐसे अवसरपर 'प्रसन्न, प्रसन्न' की भावना करें। अपने मनकी प्रत्येक अवस्थाको सावधानीके साथ देखते रहें और एक-एकका ध्यान करते रहें। फिर श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान टिका लें। प्रातः जागनेसे रातके सोनेके समयतक साधनाका समय है। इस प्रकार जबतक जागता रहे पूर्णतः सावधान और प्रमादरहित रहे। इसमें किसी प्रकारकी शिथिलता न आने पाये। साधनाके परिपक्व हो जानेपर स्वयं अनुभव होगा कि उसे अब नींदकी जरूरत नहीं है और रात-दिन लगातार साधना चलती रहेगी, अविच्छिन्न और अखण्डभावसे।

इस प्रकार रातों-दिन साधनामें लगा रहे तो ध्यान इतना जाग्रत, प्रखर और प्रगाढ़ हो जायगा कि विपश्यना ज्ञानकी परम और चरम अवस्थाकी भी उपलब्धि हो जायगी। —श्रीअक्षयबरजी पाण्डेय



## संधिवात—कारण और निवारण

( वैद्य पं० श्रीलक्ष्मीनारायणजी पारिक )

यद्यपि संधिवात एक सामान्य व्याधि समझी जाती है परंतु इस व्याधिसे पीडित व्यक्ति ही जान सकता है कि यह व्याधि कितनी कष्टदायक है। इसके 'निदान' आदिके विषयमें संक्षिप्त विचार किया जाता है—

**संधिवातके निदान—**आयुर्वेदने संधिवातको वातव्याधिमें परिगणित किया है। संधिवातमें वायुका प्रकोप विशेष रूपसे होता है। प्रायः आहार-विहारके अनुचित सेवनसे यह रोग होता है। ठंडे, बासी पदार्थका अधिक सेवन, घी-तेल आदि स्निग्ध खाद्य पदार्थोंका अल्प-सेवन, रूक्ष और लघु आहारका अधिक प्रयोग, लगातार लंघन (उपवास) करना, पञ्चकर्मका अनुचित प्रयोग, अधिक रात्रि-जागरण, अति मैथुन, अधिक कूदना तथा तैरना, चलना, व्यायाम आदि चेष्टाएँ उचितरूपसे न करना, चोट लगना इत्यादि संधिवातके कारण बनते हैं। साथ ही मल-मूत्रादि तथा अधारणीय वेगोंका धारण करना, दिवास्वप्न, चिन्ता, शोक, रस-रक्त आदि धातुका क्षय होना आदि संधिवात रोगके मुख्य कारण हैं। इस रोगका सम्बन्ध उपदंश और सुजाक आदिसे भी है।

**संधिवातकी सम्प्राप्ति—**(१) आयुर्वेदमें बताया गया है कि अनुचित आहार-विहार आदि उपर्युक्त कारणोंसे वायु प्रकुपित होकर शरीरकी सभी संधियोंमें पहुँच कर वहाँके श्लेषक कफकी मात्राको घटा देती है, जिससे संधिवात-व्याधिके लक्षण मिलते हैं।

( २ ) आधुनिक विज्ञान (Modern Science)-में संधिवातकी विकृति-सम्प्राप्ति (Pathogenesis) इस प्रकार है—

संधियोंमें सायजोवियम नामक स्तरकला होती है, जो एक द्रवका स्नाव करती है। यह स्नाव संधियोंका स्नेहन करती है। किसी आघात, संक्रमण, प्रतिक्रिया आदिसे उत्तेजित होकर प्रतिक्रियामें सायजोवियम द्रव्य अतिरिक्त द्रवका उत्पादन करता है जो कि शोथकी ओर अग्रसर होता है। कभी-कभी विषाणु या जीवाणु भी संधियोंको प्रभावित करते हैं।

**संधिवातके लक्षण**—संधिवातसे पीडित आतुर शरीरकी संधियोंको स्पर्श करनेसे और आकुंचन तथा प्रसारण करानेसे वायुकी आवाज आती है। इसमें संधिशोथका लक्षण पाया जाता है। इस संधिशूलमें चलनेमें कठिनाई तथा अल्पकर्मण्यता, आकुंचन तथा प्रसारण-कर्मके करनेमें वेदना आदि होनेके लक्षण मिल सकते हैं।

संधिवातके रोगीको सर्वप्रथम जुलाब देकर उसकी कोष्ठ-शुद्धि कर देनी चाहिये।

जुलाबके घटक द्रव्य—१५ ग्राम सोंठ तथा जौकुटी  
बारह घंटे मिट्टीके कुंडेमें २५० ग्राम पानीमें भिगायी हुई  
बराबर दूधके साथ (समभाग) मिलाकर उबाले। इसमें  
गुलाबके फूल ३-४ और सनायकी ५-१० पत्ती उबालकर  
शेष दूधमात्र रहनेसे कपड़ेसे छानकर रख ले तथा ३० से  
४० ग्राम एरंडका तेल और शक्कर मिलाकर गुनगुना  
पिला दे।

इस जुलाबसे कोष्ठकी शुद्धि एवं आँवकी शुद्धि हो जाती है। इसके उपरान्त भी विबन्ध रहे तो निम्नलिखित घटक दे—

हरड़ तत्त्वक २० ग्राम, सनाय-पत्ती २० ग्राम, रेवंद  
चीनी ५ ग्राम, सोंठ १० ग्राम, काली मिर्च ५ ग्राम, सौवर्चल  
५ ग्राम और सेंधा नमक १० ग्राम। इन सबको कूट-  
पीसकर चूर्ण बना ले। रात्रिमें सोते समय ३ से ५ ग्राम  
उष्णोदक (गरम पानी)-से ले। रोगीको कब्ज कतई न  
रहने दे।

उपदंश एवं फ़िरंगजनित संधिवातके  
रोगियोंके लिये

व्याधिहरण—१ रत्ती, अश्वगन्धा नागोरी— $\frac{१}{२}$  ग्राम,  
चोप चिन्यादि चूर्ण  $\frac{१}{२}$  ग्राम, शुद्ध कुचला  $\frac{१}{२}$  रत्ती।

ऐसी एक मात्रा प्रातः-सायं (दो मात्राएँ) शहदके साथ चटायेँ एवं ऊपरसे २५० ग्राम गरम दूधमें १५ ग्राम ब्राह्मी-घृत मिलाकर पिलाये।

भोजन करनेके बाद दोनों समय महारास्त्रादि काढा

**सन्धिवातारिगुटिका**—हीरा बोल, शुद्ध हिंगुल और शुद्ध गुग्गुल तथा इसमें अश्वगन्ध-सत्त्व और महारास्नादि-सत् समभाग लेकर दूधमें घोटकर ५० मिग्रा० की गोली बनाकर २-२ गोली दिनमें तीन बार गर्म जलके साथ सेवन करनेसे संधिवातमें लाभ होता है।

दूसरा परिणाम रक्तके कारण धमनियोंमें एक लहर पैदा होती है, जो प्रारम्भमें प्रबल होती है और धीरे-धीरे कोशिकाओंमें पहुँचनेसे पहले अदृश्य हो जाती है। धमनी

जितनी कठोर होगी, लहर उतनी ही तीव्र गतिसे चलेगी।  
जितनी संकुचनशीलता होगी, उतनी ही धीमी गतिसे चलेगी।

### उच्च रक्तचापके लक्षण

१. रोगीके सिरमें, विशेषकर सिरके पीछेकी ओर कनपटियों अर्थात् कानके पीछेके भागमें दर्द होता है। यह सिरदर्द कभी कम अथवा कभी अधिक होता है।

२. रोगीको सुबह और शामको चक्कर आने लगता है।

३. हृदयकी गति (चाल) अधिक हो जाती है। हृदयप्रदेशपर दर्द भी महसूस होता है। यह कभी भी हो सकता है।

४. रोगीका कार्य करनेमें मन नहीं लगता है। वह स्वभावसे चिड़चिड़ा हो जाता है। थोड़ा-सा कार्य करनेपर भी उसे थकान आ जाती है।

५. रोगीकी स्मरणशक्ति धीरे-धीरे कम होने लगती है।

६. रोगीको निद्रा कम आती है और आती भी है तो टूट-टूट कर आती है।

७. मन्दाग्नि हो जाती है अर्थात् भूख कम लगने लगती है और खानेमें अरुचि होने लगती है।

८. पेशाबकी मात्रा कम होने लगती है। जाँच करवानेपर पता चलता है कि पेशाबमें शक्कर अलब्यूमन अथवा चुरिक एसिड बढ़ गया है।

९. उच्च रक्तचाप होनेपर नाक और शरीरके अन्य अङ्गोंसे 'रक्तस्राव' होने लगता है।

१०. मल आदिका अनियमित त्याग और उसमें बदबू अधिक आती है।

### आयुर्वेदकी दृष्टिसे उच्च रक्तचापके कारण

१. इसका मूल कारण शरीरमें 'वात' की अधिकता है। इससे धमनियाँ कठोर हो जाती हैं।

२. यह मनुष्यके अनियमित दिनचर्याके कारण हो सकता है। जैसे—समयपर न उठना, समयपर मल-त्याग न करना, व्यायाम न करना, शाकाहारी भोजन न करना, समयपर विश्राम न करना, अनावश्यक परिश्रम करना और समयपर न सोना।

३. स्त्रियोंमें मासिक धर्म बंद होनेके समय अनियमितताका होना।

४. अधिक शोक, मानसिक क्षोभ, चिन्ता एवं क्रोध होनेसे भी रक्तचाप बढ़ सकता है।

### उच्च रक्तचाप रोगका निर्णय

आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धतिके अनुसार इस रोगविज्ञान-हेतु शक्षिणी नाडीके विषयमें विशेष ज्ञान होना अनिवार्य है। इसमें निम्नलिखित तीन बातोंका समावेश है—

१. नाडी-स्पन्दनकी संख्याका माप।

२. स्पन्दनकी तालबद्धताका ज्ञान।

३. नाडीकी संकोचनक्षमता।

आज तो प्रायः अधिकांश परिवारोंमें स्त्री एवं पुरुषोंमें उच्च रक्तचाप-रोग देखा जाता है। यदि यह शरीरमें एक बार प्रवेश कर जाता है तो इससे स्थायी रूपसे पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है। इसलिये एलोपैथी चिकित्सा-पद्धतिमें यह असाध्य रोगोंकी श्रेणीमें आता है और इसका इलाज रक्तचाप बढ़ जानेपर केवल लक्षणोंको दूर करनेकी ओर ही होता है, जैसे अनिद्राको दूर करना आदि।

इसके मूल कारण (१) धमनियोंकी कठोरताको दूर करना और उनमें पुनः संकुचनशीलता लाना (२) हृदयकी गति एवं स्पन्दनकी तालमें एक-बद्धता लाना—यह केवल आयुर्वेदद्वारा ही सम्भव हो पाया है।

इसके विकारोंका उल्लेख महर्षि चरकने सूत्रस्थान अध्याय २० में ८० प्रकारका किया है। (अशीतिर्वातविकाराः २०।१०) इनमेंसे कुछ एलोपैथिक 'हाई ब्लडप्रेसर' के लक्षणोंके समान हैं। जैसे हृदयकी धड़कन, दाँतोंका टूटना, कर्णनाद, कनपटीमें भेदनके समान पीडा, अल्पश्रममें थकान आ जाना, कम्पन, नींदका न आना आदि।

यदि आयुर्वेदिक स्वस्थवृत्तका अनुपालन हो तो रोगीको अधिक लाभ औषधिके बिना ही हो सकता है।

### आयुर्वेदिक चिकित्सा

आयुर्वेद-चिकित्साके अनुसार 'वात', 'कफ' और 'पित्त' का सम होना ही स्वस्थ शरीरका लक्षण बताया गया है। सदा स्वस्थ एवं नीरोग रहनेके लिये आयुर्वेदिक 'स्वस्थवृत्त' के निम्न नियमोंका पालन करना आवश्यक है—

१. कायिक, वाचिक एवं मानसिक रूपसे ब्रह्मचर्यका पालन करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

२. शारीरिक और मानसिक कार्य उतना ही करे, जिससे अधिक श्रम न पड़े।

३. नित्य प्रातः वन अथवा घने पेड़ोंवाले स्थानपर घूमने जाय। जहाँ प्रकाश एवं स्वच्छ हवाका अच्छा प्रबन्ध हो, ऐसे स्थानोंका सेवन करे।

४. नित्य तिलके तेलका अभ्यङ्ग करके कुनकुने पानीसे स्नान करे।

५. रात्रिमें सूर्यास्तसे पहले भोजन करे और निश्चित समयपर सोये।

६. सत्साहित्य पढ्ने-लिख्नेकी थोड़ी-थोड़ी आदत अवश्य रखनी चाहिये। मस्तिष्कको थकान न आये, ऐसा मानसिक कार्य करे।

७. प्रातः शौचशुद्धि हो जानेकी ओर विशेष ध्यान रखे।  
जड़ी-बूटियों अथवा अन्य आयुर्वेदिक क्रियाओंद्वारा  
निर्मित औषधियोंका प्रयोग

१. धमनियोंकी कठोरता दूर करनेके लिये सर्वप्रथम वैद्य इस रोगमें वनस्पति 'सर्पगन्धा' अर्थात् 'सरपिना' गोलियों या इसके अन्य कम्पाउण्डोंका उपयोग करते हैं।

सरपिना उष्ण प्रकृति होनेसे पित्त प्रकृतिवाले व्यक्ति जो उच्च रक्तचापके रोगी होते हैं, इसका प्रयोग करनेपर तुरंत घबराहट तथा बेचैनीका अनुभव करते हैं और इस प्रकारकी औषधिका पुनः सेवन करनेसे इन्कार करते हैं।

महर्षि चरकने संकुचनशीलता पैदा करनेके लिये 'चरकजा' का उपदेश दिया है। उन्होंने बताया है कि सूखी हुई लकड़ी भी जब 'स्नेहन' और 'स्वेदन' द्वारा मनके अनुसार मोड़ी जा सकती है तो फिर जीवित मनुष्यको तो 'स्नेहन' और 'स्वेदन' द्वारा इच्छानुसार परिवर्तित क्यों नहीं किया जा सकता है। इससे रोगीको स्थायी लाभ अवश्य मिलता है।

प्रथम रोगीको बाह्य एवं आभ्यन्तर 'स्नेहन' कराये। 'स्नेहन' के लिये 'सुरेन्द्र-तेल', 'बला-तेल' का उपयोग करे। यदि उक्त तेलका आभ्यन्तर उपयोग न किया जा सके तो 'बादामका तेल' दूधमें मिलाकर दे। पित्तका अनुबन्ध होनेपर शास्त्रानुसार घृतका उपयोग कराये।

‘स्नेहन’ के पश्चात् रोगीको ‘स्वेदन’ कराना चाहिये।

शिराओंकी कठोरता दूर करनेके लिये ‘मृदु स्वेदन’ जरूर देना चाहिये। इसके लिये गरम जलका ‘नाडी स्वेदन’ अथवा अवगाहन स्वेद देनेसे ही काम चल जायगा।

## उच्च रक्तचापकी औषधि

१. बृहद् वातचिन्तामणि रस—इसमें मिलाये हुए द्रव्योंमें—

(क) 'स्वर्णभस्म'— यह मधुर, स्निग्ध और बृहद् गुणयुक्त होनेसे वातका शमन और रक्तप्रसादन कर सेन्द्रिय विषका शमन करता है। स्निग्ध और शीतल गुणसे जीव रक्तवाहिनी शिराओंकी कठोरता कम करता है। रसायन होनेसे वृद्धावस्थाकी वातबाह्यल्यको नियमित करता है।

(ख) रौघ्य भस्म—(चाँदीकी भस्म) यह अम्लरस, शीतल, स्निग्ध और मधुर विपाकवाला होनेसे शिराओंके कोनेके कफ-अंशको बढ़ायेगा, इससे कठोरता कम होगी। यह शरीरके सेन्द्रिय विषको निकालकर आकुञ्चन, प्रसादन आदि गुणोंकी वृद्धि करेगा। शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंके रोगोंकी दुर्बलता दूर होगी और हृदय शक्तिशाली बनेगा।

( ग ) लौहभस्म—यह हृदय-व्यथाजन्य रोग नष्ट करता है। लौहभस्मके सेवनसे शरीर शुद्ध होकर रक्ताणु बलवान् बनते हैं। रसायन होनेसे यह वृद्धावस्थाजन्य प्रवृद्ध वातका नियमन करता है। यह व्याधिको दूर करके शरीरको नीरोग बनाता है।

(घ) अभ्रक भस्म—यह स्निग्ध तथा शीतल होनेसे वायुका शमन करता है। मधुर-रसात्मक होनेसे वातका शमन करता है तथा जीवरक्तवाहिनी शिराओंमें मृदुता लाता है।

(ड) रससिन्दूर—यह हृदयके लिये पौष्टिक, वातनाशक और विषनाशक होनेसे उच्च रक्तचापमें हितकर है।

(च) घी-क्कार—उदरस्थ अङ्गोंको व्यवस्थित कर दूषित अंशको शरीरसे बाहर करनेके कारण पक्काशयको स्वस्थ बनाता है।

इस प्रकार 'बृहद् वातचिन्तामणि रस' उच्च रक्तचाप-रोगमें एक उपयुक्त औषधि है।

**२. योगेन्द्र रस—**योगेन्द्र रसमें स्वर्णका प्रमाण अपेक्षा या अधिक होनेसे सेन्द्रिय विषका नाश कर रक्तका प्रसादन करता है। रक्तका बलकारक होनेसे हृदयकी संकोचन एवं



प्रसारण-प्रक्रियाको नियमित करता है। जिससे रक्तचापकी वृद्धि कम हो जाती है। यह अप्रत्यक्षरूपसे पाचनसंस्थान और मूत्रसंस्थानपर भी अपना असर करता है। इस रसायनके सेवनसे 'अजीर्ण वातविकार', 'निद्रानाश' आदि रोग भी दूर हो जाते हैं।

**३. भृङ्गराजासव**—इसमें पहला मूल द्रव्य भृङ्गराज है दूसरा द्रव्य हरड़ है, जो अधिक मात्रामें है। हरड़की वजहसे प्रथम प्रत्यक्ष क्रिया पक्काशयपर होती है। यह पक्काशयको धीरे-धीरे स्वच्छ करके बद्धकोष्ठताको दूर करता है। इससे वातदोषका निर्माण कम होता है, जो कि रक्तचापकी वृद्धिका मूल है। अतः अप्रत्यक्षरूपसे यह रक्तचापवृद्धिके लिये उपयोगी है।

**अर्जुन-त्वक्**—यह रक्तशोधक और विषनाशक होनेसे सेन्द्रिय विषको दूरकर रक्तको शुद्ध करता है। रक्तचापवृद्धिकी प्रारम्भिक अवस्थामें श्वास, दाह, तृष्णा आदि लक्षण हों, तब इसका प्रयोग करना चाहिये।

**चन्द्रभागा**—(सर्पगन्धा) यह वात और कफको दूर करती है। उष्ण होनेसे वायुका अनुलोमन करती है तथा रक्तचापवृद्धिको कम करती है और निद्रा लाती है।

**जटामासी**—इसके कड़वी, कसैली एवं शीतल होनेके कारण रक्तचापवृद्धि रोगके साथ मधुमेह रोग हो तो धमासा, शङ्खपुष्पीके साथ उपयोग करनेसे शक्कर कम हो जाती है। यह मस्तिष्ककी पीडा और दिलकी धड़कनको दूर करती है।

**शङ्खपुष्पी**—यह सारक और उष्ण होनेसे वायुका अनुलोमन करती है। यह शिराओंकी कठोरता दूर करके रोगको दूर करती है। रसायन होनेसे वृद्धावस्थाजन्य बढ़े हुए वायुका नियमन कर रोगको दूर करती है। मेध्या होनेसे मस्तिष्कको शक्ति देगी और निद्रा आने लगेगी।

**धमासा-जवासा**—शीतल होनेसे यह रक्त शोधक एवं रक्तरोधक है। रक्तशोधक होनेसे शुद्ध रक्तद्वारा हृदयको

शक्ति मिलती है तथा हृदयका कार्य नियमित होने लगता है। यह कषाय रस एवं लेखन गुणोंसे शिराओंकी कठोरताको कम करता है।

### रोगकी विशेष अवस्थामें

१. यदि सिरदर्द अधिक हो तो कपर्दी भस्म तथा अकीक भस्म आँवलेके मुरब्बेके साथ देवें। रात्रिमें बृहद् वातचिन्तामणि रस और सर्पगन्धा चूर्ण मिलाकर दूधके साथ दे।

२. अनिद्रा हो तो सुबह-शाम सर्पगन्धा चूर्ण और बृहद् वातचिन्तामणि रस मिलाकर दूधके साथ दें। रक्त-दबाव कम करनेके लिये 'सर्पगन्धा' एलोपैथिक चिकित्सक भी प्रचुर मात्रामें उपयोगमें लाते हैं। सर्पगन्धा स्वयं उष्णवीर्य है। अतः पित्तप्रकृतिवालेको प्रवाल पिष्टी या सिता मिलाकर देनेसे अच्छा लाभ होता है। नारायण तेलकी अथवा कढ़ूके तेलकी सिरपर मालिश करनेसे भी लाभ होता है।

रक्तचापकी अत्यन्त बढ़ी हुई अवस्थामें पक्षाघात रोग होनेकी सम्भावना रहती है। इसलिये 'उच्च रक्तचापवृद्धि'—को पक्षाघातका सचेतक मान लेना चाहिये। पक्षाघात होनेसे पूर्व उच्च रक्तचापवृद्धिमें शिराओंका कठोर होना आवश्यक है।

'रक्तचापवृद्धि'के और 'शिरावगत वातरोग'के लक्षणमें कोई अन्तर नहीं है। अनुभवी वैद्योंसे परामर्श कर रोगीको लाभ लेना चाहिये।

कोई भी औषधि कम मात्रामें लेना रोगीके लिये कोई भी लाभ न देगी। इससे उन औषधियोंकी उपयोगिता नहीं है यह मान लेना एक भ्रम है। औषधियोंका प्रभाव शीघ्र हो, इसके लिये मात्रासे अधिक औषधि नहीं लेनी चाहिये। अधिक लेनेसे हानि हो सकती है, इसलिये प्रत्येक आयुर्वेदिक औषधिको अनुभवी शिक्षित वैद्यके मार्गदर्शनमें ही लेना चाहिये। (प्रे०—वैद्य श्रीपवनजी व्यास)



आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्। आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

धर्म, अर्थ तथा विविध सुखोंका साधनभूत—दीर्घजीवन चाहनेवालेको आरोग्यशास्त्रके (आहार-विहार एवं आचार-विचार-सम्बन्धी) उपदेशोंका विशेष आदर (तदनु रूप आचरण) करना चाहिये।



## दमा ( श्वास )-रोग—आहार-विहार तथा ध्यान

( डॉ० श्रीजानकीशरणजी अग्रवाल, एम्०डी० ( आयु० ) )

दमा (श्वास) एक बहुत कष्टदायक रोग है। यह मनुष्यको शारीरिक तथा मानसिक रूपसे अपङ्ग बना देता है। ऐसी मान्यता है कि दमारोग मृत्युके साथ ही जाता है, परंतु रोगी अगर अपने स्वास्थ्यके प्रति सजग है, विवेकपूर्ण आहार-विहार करता है तो इस रोगसे होनेवाले शारीरिक और मानसिक कष्ट नगण्य हो जाते हैं और वह एक स्फूर्तिदायक एवं आनन्ददायक जीवन व्यतीत कर सकता है। कुछ छोटी-छोटी ध्यान देनेवाली बातें नीचे दी जा रही हैं, जो अनुभूत हैं—

सुबह उठकर शौच जानेसे पूर्व एक-डेढ़ किलो पानी अवश्य पीयें। पानी अगर ताँबे अथवा चाँदीके पात्रमें रातभर रखा हो तो और अच्छा है। शौच-मंजन आदि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर कटिस्नान लें अथवा घुटनोंके नीचे दोनों टाँगोंको पानीसे ५ मिनटतक तर (गीला) करके रखें। इसके लिये पानीकी टोंटीके नीचे क्रमशः घुटनोंको रखकर घुटने और पिण्डलियोंको पानीसे तर करते रहें। अगर खड़े होनेमें परेशानी हो तो स्टूलपर बैठकर पानीके पाइपसे आरामसे तर कर सकते हैं। इसके बाद बिना पानी पोछे उठ जाय, जो भी धोती आदि कपड़ा पहन रखा हो, उससे अच्छी प्रकार ढक दें, जाड़ा हो तो ऊपरतक मोजा पहन लें, जिससे पिण्डलियोंमें रक्तसंचार बढ़े। सीने (फेफड़ों)-से रक्तसंचार होकर पैरोंकी तरफ दौड़ता है, जिससे श्वास लेनेमें आसानी होती है। कटिस्नानके लिये एक प्लास्टिककी बड़ी चिलमची लेकर उसे आधासे अधिक जलसे भर ले और उसमें थोड़े वस्त्रसहित बैठ जायँ। यह ध्यान रखें कि टब इतना बड़ा हो कि पानी नाभितक आ जाय। पैरोंको टबसे बाहर रखें। अच्छा हो पैर गीले न हों। दाहिने हाथसे नाभिसे नीचे पेटको मलते रहें। यह क्रिया पहले १ मिनटसे शुरू करके धीरे-धीरे ३ मिनटतक बढ़ा ले जायँ। इससे अधिक समयतक बैठनेसे नुकसान हो सकता है। इस क्रियाका भी वही महत्त्व है जो घुटने, पिंडली-पादस्नानका है। कटिस्नान क्रब्ज, पेचिश, पेटके रोग, गद्द बढ़ना, गर्भाशय, प्रजननसम्बन्धित रोग, मूत्राशयके रोग दूर करनेमें सहायक होता है। कटिस्नान सप्ताहमें ३ बारसे अधिक न करें। एक दिनमें एक ही उपाय करें, कटिस्नान अथवा घुटना, पाद-स्नान अथवा १-१ दिन अदल-बदलकर कर सकते हैं। घुटना, पादस्नान, टाँगों,

घुटनोंके दर्दमें भी बहुत लाभदायक है।

जो लोग चाय-दूध आदिके अभ्यस्त हैं, जलक्रियाके बाद ले सकते हैं, साथ ही जो नियमित दवाइयाँ हैं, वे भी इस समय १-२ बिस्कुटके साथ ले सकते हैं।

ध्यानका श्वास और हृदयरोगमें मुख्य स्थान है। जिस पद्धतिसे ध्यान जानते हों, अवश्य करें। ध्यानके लिये सुखासनपर पलथी लगाकर बैठ जायँ। जो घुटने आदिके दर्दके कारण पलथी न लगा सकें, कुर्सीका इस्तेमाल कर सकते हैं। पहले दीर्घश्वास लें, दाहिने हाथके अँगूठेसे दाहिना नासाद्वार बंद करके १० बार दीर्घ श्वास लें और निकालें। फिर छोटी तथा दूसरी अनामिका अंगुलीसे बायाँ नासाद्वार बंदकर दायें नासाद्वारसे १० बार दीर्घ श्वास लें और बाहर निकालें। फिर दायाँ नासाद्वार बंद कर बाँयें नासाद्वारसे दीर्घश्वास लें, बायाँ नासाद्वार बंदकर दायें नासाद्वारसे श्वास बाहर निकालें तथा दायें नासाद्वारसे श्वास अंदर भरकर दायाँ नासाद्वार अँगूठेसे बंदकर बाँयें नासाद्वारसे श्वास बाहर निकालें। यह प्रक्रिया दस-दस बार दोहरायें। दिनमें जब भी समय मिले श्वास-निःश्वासकी यह प्रक्रिया दोहराते रहें। प्राणायामकी छोटी-सी क्रियाके बाद अपने आने-जानेवाले श्वासपर ध्यान केन्द्रित करें। अंदर जानेवाला श्वास ओठके ऊपरी भागको छूकर जा रहा है और बाहर आनेवाला श्वास भी नासिकाके नीचेवाले छोरको छूता हुआ बाहर निकल रहा है। श्वासके स्पर्शकी अनुभूतिपर ही ध्यान केन्द्रित करें। इसे आनापान-विधि कहते हैं। ध्यान निरन्तर अभ्याससे होता है। शुरू-शुरूमें तो जब आप ध्यानपर बैठेंगे तो मन बहुत विचलित होगा तथा आपको आसनसे उठा देगा। अतः ध्यान लगे न लगे, आपको आसनपर जमकर बैठना है। शुरूमें १५ मिनटकी अवधिसे लेकर बढ़ाकर धीरे-धीरे एक घंटा ले जायँ। भगवान् बुद्धद्वारा बतायी गयी विपश्यना नामक ध्यान-पद्धति इसमें बहुत कारगर सिद्ध हुई है।

ध्यानके बाद घूमना भी श्वासरोगमें बहुत हितकर है। सुबह-शाम शरीरके बलके अनुसार नियमित घूमना आवश्यक है। इससे ताजा हवा मिलनेसे चमत्कारिक लाभ मिलता है तथा आत्मविश्वास बढ़ता है, जो कि इस रोगमें बहुत जरूरी है।

घूमनेके बाद स्नानसे पूर्व नाश्ता करें। नाश्ता जितना हलका करेंगे, श्वास उतना ही ठीक रहेगा। सबसे अच्छा

मौसमी फलोंका नाश्ता, आम, पपीता, सेब, केला, संतरा, नाशपाती, अमरूद जो भी मीठा फल हो, नाश्तेमें लें। कभी-कभी अंकुरित मूँगकी दाल, चने आदि ले सकते हैं। अगर जरूरत समझें तो दूध भी ले सकते हैं, इससे शरीरको ताकत मिलती है। श्वासके रोगियोंको यह डर रहता है कि दूध बलगम बनाता है, जब कि दूध सुपाच्य है। शरीरमें बलकी वृद्धि करता है और रोगप्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है। अतः सुबह-शाम एक-एक पाव दूध अवश्य पीयें। डायबिटीजके मरीज नाश्तेमें खीरा, टमाटर, दही, अंकुरित मेथी अथवा मूँग ले सकते हैं।

सूखे मेवे—बादाम, काजू, किशमिश, मुनक्का, सफेद मिर्च भी श्वासरोगमें बहुत अच्छा लाभ करते हैं। ५ मुनक्का, ५ बादाम, २ सफेद मिर्चकी गोली बनाकर रख ले और सुबह-शाम मुँहमें रखकर चूसें। मुनक्काको धोकर सुखा लें। उसमेंसे बीज निकालकर सिलपर पीस लें। बादाम तथा सफेद मिर्च मिक्सीमें पीसकर पाउडर बना लें। फिर मुनक्का और बादाम, मिर्चके पाउडरको एक साथ मिला लें। ५ मुनक्का, ५ बादाम तथा २ सफेद मिर्चके हिसाबसे आकारकी गोली बना लें। सुबह-शाम चूसें, इससे क्रब्जियत दूर होती है। पाचन बढ़ता है, बलगम निकलता है और बलकी वृद्धि होती है।

दोपहरको तथा शामको रोटी, हरी सब्जियाँ लें। दालोंका प्रयोग कम करें। मूँग-मसूर हलकी होती हैं। अरहर, उर्द, राजमा, सोयाबीन, चना आदिकी दालोंसे परहेज करना चाहिये। चावल सप्ताहमें एक बार ले सकते हैं। खटाई, मिर्च, तेल, वैजिटेबल ऑयल, तली हुई वस्तुएँ, मैदेसे बने पदार्थ, पेटमें तेजाब बनानेवाले खाद्य पदार्थ, बर्फ अथवा फ्रीजकी अति ठंडी वस्तुओंका सेवन न करें। जो भी खायें, सतर्कतापूर्वक ध्यान रखें। जो चीज शरीरको नुकसान दे, जिह्वाके स्वादवश पुनः न खायें। अगर शरीर कृश है तो शुद्ध घीसे बना भोजन इस्तेमाल करें। डालडा, रिफाइन्ड इसमें नुकसान देते हैं।

अपराह्णमें फल ले सकते हैं। अनार बहुत फायदेमन्द है, बलगम निकालता है तथा अन्य फलोंकी तरह शक्ति और ताजगी देता है। खीरा और फलोंके अधिक सेवनसे यह फायदा है कि ये शरीरमें तेजाबकी मात्रा नहीं बढ़ने देते। श्वासके हर रोगीमें ऑक्सीजनकी कमी तथा कार्बन

डाइ ऑक्साइडकी मात्रा बढ़ जाती है। फल क्षारीय होनेकी वजहसे शरीरमें क्षार और अम्लके संतुलनको बनाये रखने तथा शरीरसे हानिकारक पदार्थोंको बाहर निकालनेमें बहुत सहायक होते हैं। रात्रिमें सोते समय दूध ले सकते हैं। रात्रिका भोजन जल्दी करें तथा जल्दी सोनेकी कोशिश करें। श्वासवालेको दिनमें सोना वर्जित है।

पानीका खूब सेवन करें। ५-६ लीटर पानी रोज पियें। गर्मियोंमें सादा तथा जाड़ोंमें गरम पानी पियें। यही सावधानी स्नानमें बरतें। अगर मौसम बदलनेसे बरसात अथवा जाड़ोंमें ठंडे पानीसे शरीरमें कैपकपी आये तो स्नानमें गरम पानीका इस्तेमाल करें। गरम पानीसे शरीरमें रक्तका संचार बढ़ता है, जिससे पसीना आता है और यह साँसमें सहायक होता है। स्नान अपने शरीरकी शक्तिके अनुसार करें। शरीरमें थकान तथा श्वासकी गति न बढ़ने पाये। चाहे तो किसीकी सहायता ले सकते हैं।

अगर पेटमें क्रब्ज रहता है तो त्रिफला, मुनक्का अथवा सूखे अंजीरके सेवनसे पेटको साफ रखें। श्वासवाले रोगीको यूरोपियन लेटरिनका इस्तेमाल करनेमें सुविधा रहती है।

अंग्रेजी, आयुर्वेदिक, यूनानी अथवा होम्योपैथिक कोई भी दवाई अपने चिकित्सककी सलाहसे लें। जिन्हें अधिक श्वास रहता है, उन्हें नेबुलाइजरके प्रयोगसे बहुत फायदा होता है। नेबुलाइजर तथा पम्पके इस्तेमालसे खानेवाली दवाइयोंके गलत असरसे बचा जा सकता है। शरीरमें कोई भी हरकत करनेसे पूर्व यह सुनिश्चित कर लें कि इससे श्वास तो नहीं फूलेगा। अगर ऐसा है—जैसे मलत्याग और स्नान आदिके लिये जानेसे पूर्व पम्पका अवश्य इस्तेमाल करें ताकि श्वासकष्ट अधिक न हो।

शक्तिके अनुसार हलका व्यायाम और प्राणायाम किसी भी अच्छे जानकारकी निगरानीमें करें। कपालभाति, ब्रह्मदक्षिका (गर्मीमें शीतली), नाडीशोधन, प्राणायाम तथा कोणासन, योगमुद्रा और मत्स्यासन बहुत सहायक होते हैं।

अगर वजन अधिक है तो अपने कदके अनुसार वजनको संतुलित आहार-विहारसे कम करें। नाक, कान, गलेके विशेषज्ञसे परामर्श तथा छातीका एक्स-रे, खूनकी जाँच डॉक्टरकी सलाहसे अवश्य करायें। रेकी-चिकित्सा भी इसमें काफी लाभप्रद सिद्ध हुई है।



## हृदयरोग

हमारे शरीरमें स्थित मुट्टीके आकारका हृदय एक मिनटमें ७० बार धड़कता है और एक घंटेमें ३०० लीटर रक्त शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें प्रसारित करता है। हृदयका मुख्य कार्य रक्तको शुद्ध करके शरीरके प्रत्येक हिस्सेमें रक्तकी आपूर्ति करना है। जब रक्तप्रवाहमें रुकावट आती है तो हृदयको अपना कार्य करनेमें कठिनाई होती है। रक्तप्रवाहमें अवरोध आनेके कारण कुछ मांसपेशियाँ क्षतिग्रस्त हो जाती हैं, जिससे तीव्र वेदना होती है और अन्य लक्षण उत्पन्न होते हैं। स्वयं हृदयको दो छोटी-छोटी धमनियोंसे थोड़ा-सा रक्त मिलता है। यदि इन धमनियोंमें कोई रुकावट पैदा हो गयी तो खतरनाक स्थिति हो जाती है। यह रुकावट रक्तवाहिनी नलिकाओंकी दीवारोंके सिकुड़कर मोटा पड़ जाने, रक्तके थक्के बननेके कारण होता है। इस विकृतिके कारण कई प्रकारके हृदयरोग उत्पन्न हो जाते हैं—(१) हृदयाघात, (२) हृदयशूल, (३) हृदयदौर्बल्य, (४) रक्तभारवृद्धि, (५) हृदयकपाटी रोग (६) हृदय-अन्तःशोथ (७) हृदय-अवरोध आदि। गलत खान-पान, शारीरिक परिश्रम न करना, धूम्रपान, मादक द्रव्योंका सेवन, मानसिक तनाव, मोटापा, औषधियोंका धुआँधार सेवन आदि हमारे शरीरको रुग्ण बना देते हैं। काम, क्रोध, चिन्ता, भय, शोक, मोह, लोभ आदि मानसिक आवेगके समय मस्तिष्कको अत्यधिक रक्तकी आवश्यकता पड़ती है। अधिक मात्रामें गरिष्ठ भोजनसे आमाशय और आँतें कमजोर पड़ जाती हैं। क्षमतासे अधिक कार्य करनेके कारण हृदयपर प्रतिकूल असर पड़ता है। हृदयका दौरा पड़ते ही हर व्यक्ति आशंकित हो जाता है। रोगी ठीक होगा या नहीं, यदि ठीक होगा तो इसके लिये क्या करना चाहिये? दौरा पड़नेके प्रथम घंटेमें जो उपचार हो जाता है, वही जीवन बचा सकता है। इसलिये है कि हृदयरोगके बारेमें आवश्यक जानकारी रखी जाय—

### सुरक्षात्मक उपाय

(१) प्रातः उठकर ताँबेके बरतनमें रखा पानी पियें, भोजनके बीचमें बार-बार पानी न पियें, भोजनके आधे घंटे बाद यथेच्छ पानी पीना चाहिये। प्रतिदिन कम-से-कम तीन

लीटर पानी पीनेसे शरीरके दूषित तत्त्व पसीने एवं मूत्रके द्वारा बाहर निकल जाते हैं।

(२) संतुलित भोजन करें। धूम्रपान, मांसाहार तथा गरिष्ठ भोजनका पूर्णतया त्याग कर दें। शाकाहारी, पौष्टिक, सुपाच्य, वसारहित और ताजा बना हुआ भोजन शरीरके लिये हितकर है।

(३) निश्चित समयपर दिनमें तीन बार उतनी ही मात्रामें भोजन करें, जितना आवश्यक हो। अधिक भोजन करनेसे गैस बनती है, पाचनतन्त्रको अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है और शरीरको इससे लाभ कुछ नहीं होता। रातका भोजन सोनेसे लगभग दो घंटा पहले करें।

(४) प्रौढावस्था आनेके बाद वसायुक्त पदार्थ—घी, दूध, दही, तेल, मक्खन आदिका प्रयोग कम-से-कम करें। सोयाबीन, मूँगफली और सूर्यमुखीका तेल उपयोगमें लाना चाहिये।

(५) हरी सब्जी—पालक, मेथी, बथुआ, धनिया तथा मूली, लौकी, पपीता, परवल, गाजर, टमाटर, संतरा, बंदगोभी, अदरक, खीरा आदि स्वास्थ्यके लिये उत्तम हैं। इनका कच्चे रूपमें सलाद बनाकर अथवा रस निकालकर सेवन कर सकते हैं। गेहूँके पौधेका रस हृदयरोगमें बहुत गुणकारी है। रेशेदार आहारसे हृदयरोगको काफी कम किया जा सकता है।

(६) चाय, कॉफी, धूम्रपान, शराब एवं अन्य मादक द्रव्योंको विषतुल्य समझें। इनके सेवनसे हृदयरोगके साथ ही अन्य रोग भी हो जाते हैं।

(७) नमकका प्रयोग कम-से-कम करें। पापड़, चटनी, अचार, नमकीन आदिसे परहेज करें, क्योंकि इनमें भी नमककी मात्रा अधिक होती है। दालका प्रयोग भी कम करें, यह वायुकारक होती है। मूँग और चनेकी दाल छिलकेसहित प्रयोग कर सकते हैं। यदि ये अंकुरित हों तो और अच्छा है।

(८) ताजे हरे आँवलेका अधिक-से-अधिक सेवन करें। इसकी चटनी भोजनके साथ लें। प्रातः दो आँवलेका रस शहद मिलाकर खाली पेट लें। प्रातः सूखे आँवलेका

चूर्ण लेना भी उत्तम है।

(९) मलाई उतारे दूधके बने मट्टेमें अजवाइन और काला नमक डालकर नियमित रूपसे सेवन करें।

(१०) हृदयरोगमें एक अत्यन्त गुणकारी आयुर्वेदिक योग निम्न प्रकारसे है। इसे नियमित रूपसे लेना चाहिये—

(क) प्रातः ११ एकपुटिया लहसुन २५० ग्राम दूधमें उबालें। एक छटाँक दूध बच रहे तो छान लें और लहसुन खाकर दूध पी लें।

(ख) दोपहरके भोजनके बाद दो चम्मच अर्जुनारिष्ट समान जलसे लें तथा अर्जुनके छालका चूर्ण ५ ग्राम शहदेके साथ लें।

(ग) हरेका चूर्ण २ चम्मच रातको सोते समय लें।

(११) सप्ताहमें एक दिनका पूर्ण उपवास रखें। इस दिन केवल फलोंका रस या नीबूका पानी लें।

(१२) हृदयरोगसे बचनेके लिये सूर्यनमस्कार तथा योगासन, ध्यान और प्राणायाम बहुत उपयोगी है। प्रतिदिन कुछ समय इसमें लगानेसे सदैव स्वस्थ रहा जा सकता है। जलनेति एवं सूत्रनेतिके साथ ही वज्रासन, पवनमुक्तासन, शलभासन, मयूरासन, सर्वाङ्गासन और शवासन नियमित रूपसे करना चाहिये।

(१३) अत्यधिक गरमी एवं ठंडकसे शरीरको बचायें। सामर्थ्यसे अधिक इतना परिश्रम न करें कि दम फूलने लग जाय, शरीरको जितना सह्य हो उतना ही श्रम करें। कुछ-न-कुछ शारीरिक व्यायाम अवश्य करना चाहिये। प्रातः क्षमताके अनुसार तेज कदमसे टहलें। दो-तीन मीलतकका प्रातःभ्रमण स्वास्थ्यके लिये अनुकूल है।

(१४) किसी भी प्रकारके मानसिक तनाव, पारिवारिक कलह और दोहरी जीवनशैलीसे बचनेका हर सम्भव प्रयास करें। यह हृदयरोगके प्रमुख कारणोंमेंसे एक है।

(१५) अधिक साहसी एवं सहनशील न बनें। थकावट होनेपर या दर्द होनेपर आराम करें। यदि घर वापस आते समय दर्द उठ जाय या अत्यधिक थकावट महसूस हो तो बैठकर आराम करनेमें न हिचकें। समय-समयपर स्वास्थ्य-परीक्षण कराते रहें। नियमित दिनचर्या रखें।

(१६) रात्रिको शयन करते समय दिनभरकी हर

समस्यासे अपना ध्यान हटा लें। यह निश्चय कर लें कि इस समय मुझे और कुछ न तो करना है और न सोचना ही है। अपना ध्यान श्वास-प्रश्वासकी प्रक्रियापर लगायें। कुछ मिनट बाद पैरोंपर ध्यान ले जाकर सोचें कि पैर निस्पन्द हो रहे हैं, जैसे कि शरीरसे उनका सम्बन्ध है ही नहीं। पुनः श्वास-प्रश्वासपर ध्यान ले जायें। फिर इसी प्रकार हाथोंका चिन्तन करें। क्रमशः प्रत्येक अङ्गका चिन्तन करनेके कुछ देर बाद लगेगा कि श्वास-प्रश्वासके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। ध्यान श्वास-प्रश्वासपर केन्द्रित हो जायगा। श्वास-प्रश्वासकी गति स्वाभाविक और सूक्ष्म होती चली जायगी, मन शान्त हो जायगा और अच्छी नींद आयेगी।

(१७) यह सिद्धान्त बना लें कि जो भी करेंगे, शरीरके स्वास्थ्य-हितमें करेंगे। स्वास्थ्य-हितके विरुद्ध कुछ भी न करेंगे।

### दौरा पड़नेके लक्षण

जब रक्तप्रवाहमें किसी प्रकारकी रुकावट आती है तो हृदयको अपना कार्य करनेमें कठिनाई होती है और हृदय तत्काल निम्न लक्षण उत्पन्न करके चेतावनी देता है—

(१) अचानक सीनेमें तेज असहनीय दर्द उठता है। दर्दका स्थान सीनेके बीच पसलीके जोड़पर और बायीं ओर होता है, जो अन्य हिस्सोंमें फैल जाता है।

(२) ऐसा लगता है कि किसीने सीनेपर पत्थर रख दिया हो या मजबूत रस्सीसे सीनेको चारों तरफसे कोई बुरी तरह लपेट रहा हो। कभी-कभी लगता है कि सीनेमें कोई नुकीली वस्तु चुभा दी गयी हो, कोई अंदरके अवयवोंको खींचकर काट रहा हो।

(३) बेहद घबराहट और बेचैनी होती है। श्वास लेनेमें कष्ट होने लगता है। श्वास रुकती-सी मालूम होती है।

(४) लेटने, बैठने, आराम करनेसे दर्दमें कमी नहीं होती।

(५) कभी-कभी सीनेमें दर्द न होकर चक्कर, पसीना, उलटीके साथ अत्यन्त थकावट महसूस होती है।

## दौरा पड़नेपर क्या करें

(१) रोगीको भूमिपर पीठके बल इस प्रकार चित लिटा दें कि सिर और कंधे कुछ ऊँचाईपर रहें। हिलने-डुलनेसे रोकेँ। सिरको दायीं या बायीं ओर घमाकर रखें।

(२) यथाशीघ्र चिकित्सकको बुलाने और निकटवर्ती चिकित्सालयमें रोगीको ले जानेकी व्यवस्थाके लिये किसी अन्य जिम्मेदार व्यक्तिको निर्देशित करें और स्वयं तत्परतापूर्वक प्राथमिक उपचारमें लग जायँ।

(३) देखें कि श्वासनली खुली है या नहीं। एक हाथसे ठोड़ीको ऊपर उठाकर दूसरे हाथसे सिरको नीचे दबायें। ऐसा करनेसे श्वासनली खुल जाती है और जीभ सीधी हो जाती है। यदि सीधी न हो तो अंगुलीसे जीभ सीधी कर दें।

(४) यदि यह आशंका हो कि श्वास नहीं चल रही है तो मुँहके पास कान सटाकर सुनें, देखें कि सीना ऊपर-नीचे हो रहा है या नहीं। यदि श्वास न चल रही हो तो कृत्रिम श्वास इस प्रकारसे दें—मुँहके भीतर देखें कि जीभ पीछे जाकर अवरोध तो नहीं उत्पन्न कर रही है। यदि ऐसा है तो जीभ सीधा कर दें। रोगीके मुँहपर हलका कपड़ा रख दें। अपने मुँहको रोगीके मुँहसे हाथके सहारे सटा दें और मुँहमें श्वास भरकर जोरसे फूँकें। पुनः श्वास खींचकर भीतर फूँकें। अपने मुँहके पास हाथ लगाये रखें और एक हाथसे नाक बंद कर दें, जिससे पूरी हवा फेफड़ेके अंदर जाय। इस प्रक्रियामें सीना नीचे-ऊपर उठता प्रतीत होगा। जबतक श्वास अच्छी तरह चालू न हो जाय, तबतक इसे करते रहें।

(५) इसके बाद तुरंत सीनेसे कान सटाकर देखें कि दिल धड़क रहा है अथवा नहीं। यदि नहीं, तो दायीं ओर घुटनेके बल बैठ जायँ। दोनों पसलीके जोड़के पास नीचे बीचोबीच सीनेपर बायीं हथेली रखकर उसके ऊपर दायीं हथेली रखें। झुककर रोगीके ऊपर इस प्रकार आ जायँ कि कंधा ठीक सीनेके ऊपर हो। दोनों हथेलियोंको कम-से-कम एक इंच नीचेतक शीघ्रतापूर्वक दबायें और छोड़ दें। हाथ वहींपर रखें। पुनः सीनेको दबायें और छोड़ दें। यही क्रिया तत्परतापूर्वक बार-बार करते रहें। यह क्रिया एक

मिनटमें लगभग १८-२० बारकी गतिसे होनी चाहिये। यह ध्यान रखें कि दबाव अगल-बगलकी पसलीपर न होकर बीचमें पसलीके जोड़पर हो। १५-२० दबावके बाद मुँह-से-मुँह लगाकर श्वास दें। यह क्रम तबतक जारी रखें जबतक कि ठीकसे श्वास न चलने लगे और दिल धड़कने न लग जाय। यदि दिलकी धड़कन और श्वास-प्रश्वास बंद मालूम पड़े तो एक व्यक्तिको मुँह-से-मुँह लगाकर कृत्रिम श्वास देनेपर लगा दें और स्वयं सीनेपर दबाव देकर धड़कन चालू करनेका प्रयास करें।

(६) हृदयका गम्भीर दौरा पड़नेपर कुछ ही मिनटोंमें प्राणान्त हो सकता है। प्रारम्भिक ४-५ मिनट अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं। अतः यह ध्यान रखें कि एक-एक क्षण कीमती है। दौरेकी आशंका होते ही किसी अन्य व्यक्तिकी मदद लेकर चिकित्सकको बुलानेका उपक्रम और चिकित्सालय ले जानेकी व्यवस्था तुरन्त की जानी चाहिये। साथ ही उपयुक्त प्राथमिक उपचार भी तत्परतासे करते रहना चाहिये। किसी प्रकारकी प्रतीक्षा करके या अन्य बातोंमें समय नष्ट नहीं करना चाहिये।

(७) चिकित्सककी सलाह लेकर इस रोगसे सम्बन्धित कुछ औषधियाँ सदैव पासमें रखनी चाहिये, ताकि आवश्यकता पड़नेपर तत्काल लिया जा सके। हृदयके दौरैके बाद लंबे समयतक पूर्ण विश्रामकी आवश्यकता पड़ती है। यदि जीवित रहना है तो शेष जीवन दिनचर्यामें आमूल परिवर्तन करके अत्यन्त सावधानी तथा संयमसे बिताना चाहिये।

चिकित्सालयमें ले जानेपर रोगीको इंजेक्शन देकर खूनके बन रहे थक्कोंको घुलाकर रक्तके प्रवाहको सामान्य बनानेकी कोशिश करते हैं। इससे हृदयकी पेशियाँ कम-से-कम क्षतिग्रस्त होती हैं। रोगीको तत्काल गहन चिकित्साकी आवश्यकता होती है, जिसमें ई०सी०जी०, रक्तचाप, श्वसनक्रिया और रक्तमें ऑक्सीजनकी मात्रा आदिकी जाँच प्रमुख है। आवश्यकतानुसार हृदयका ऑपरेशन भी करना पड़ सकता है।

प्रारम्भके कुछ घंटे जीवनके लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं। तत्परतापूर्वक किये गये प्राथमिक उपचारपर यह निर्भर रहता है कि कितनी कम या अधिक क्षति हुई और रोगीका जीवन बच सकता है या नहीं!



## पक्षाघातकी अनुभूत चिकित्सा

( डॉ० श्रीसत्यपालजी गोयल एम्०ए०, पी-एच्०डी०, आयुर्वेदरत्न )

**पक्षाघातका प्रकार**—पक्षाघात शरीरके किसी भी अङ्गमें हो सकता है। आँखका पक्षाघात, अंगुलियोंका पक्षाघात, जीभका पक्षाघात, सीधे हाथ एवं पैरका पक्षाघात, वामभागका पक्षाघात, निम्नाङ्ग (अर्द्धाङ्ग)–का पक्षाघात (इसमें कमरसे नीचेका अङ्ग रह जाता है)। पक्षाघातमें शरीरके अङ्ग मुड़ जाते हैं। अनेक बार मुड़ते नहीं हैं, परंतु उनकी क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है। अङ्गोंमें रक्तका सञ्चार तो रहता है, परंतु इसकी गति बहुत ही क्षीण रहती है। प्रायः रोगी पराश्रित हो जाता है, वह अपनेको अपाहिज तथा दूसरोंकी दयाका पात्र समझने लगता है। प्रत्येक रोगीको यह समझ लेना चाहिये कि यह रोग सर्वथा असाध्य नहीं है। किसी कुशल चिकित्सकके निर्देशनमें यह निन्यानबे प्रतिशत ठीक भी हो जाता है।

**रोग-उत्पत्तिका कारण**—कुछ ऐसे प्रधान कारण हैं जो पक्षाघातको जन्म देते हैं। यदि सामान्य रूपसे इन कारणोंसे सावधानी बरती जाय तो पक्षाघातके रोगसे बचा जा सकता है—

१-विद्युत्-करंट लगनेसे अनेक बार मृत्यु न होकर कोई अङ्गविशेष झटका लगनेसे निष्क्रिय हो जाता है। प्रत्येक शरीरधारी मनुष्यके शरीरमें बारह वोल्टकी विद्युत् प्रवाहित होती रहती है। यदि इससे दुगुनी या तिगुनी विद्युत् शरीरमें प्रवाहित हो जाय तो पक्षाघात-रोगका होना सम्भव है। अति प्रसन्नता या विषादकी स्थितिमें हृदयद्वारा रक्तका प्रवाह अधिक गतिसे होने लगता है, जिससे शरीरके किसी अङ्गविशेषमें विद्युत्का घर्षण बढ़ जाता है तथा वह अङ्ग पक्षाघात-रोगसे ग्रस्त हो जाता है। अतएव अति प्रसन्नता या विषादके अवसरोंपर अधिक भावुक नहीं होना चाहिये। यथासम्भव समभावसे विचरण करना चाहिये और अधिक संग्रह-परिग्रह तथा सम्बन्धोंमें आसक्ति नहीं रखनी चाहिये, इससे शरीर एवं मन स्वस्थ रहता है।

२-किसी दुर्घटना या मार-पीटके कारण अङ्गविशेषमें गहरी चोट लग जानेसे भी उस अङ्गकी क्रियाशीलता नष्ट

हो जाती है। अतएव ऐसी स्थितिमें उस अङ्गकी चिकित्सा तुरंत करानी चाहिये। लम्बी उपेक्षा पक्षाघातको स्थायित्व दे सकती है।

३-अधिक शीत या ठंड लग जानेसे भी अङ्गोंमें संज्ञाशून्यता आ जाती है। प्रायः जो पुरुष ठंडमें खुले आकाशके नीचे शून्यसे भी कम सेल्सियस तापमानपर काम करते हैं और उनके शरीरकी उष्णता आयुके प्रमाणसे कम होती है तथा जो महिलाएँ ठंडमें कार्य करती हैं, उनको भी पक्षाघात होनेकी सम्भावना अधिक रहती है।

४-जो मनुष्य प्रायः तनावग्रस्त रहते हैं, उनको भी पक्षाघात-रोग होनेकी सम्भावना रहती है।

५-यौन-असंतुष्टि भी पक्षाघातका कारण बनती है।

६-जिन मनुष्योंके भोजनमें वात-शामक वस्तुएँ जैसे हींग तथा लहसुनका अभाव रहता है, उनको भी यह रोग सम्भावित है। हमारे धर्मग्रन्थोंमें तामसी पदार्थ होनेसे लहसुनका आन्तरिक प्रयोग वर्जित है। अतएव लहसुनका उपयोग न करके शुद्ध हींगका उपयोग किया जा सकता है। व्यक्ति यदि पचास मिलीग्राम भुनी हुई हींगको सेंधा नमकके साथ प्रतिदिन खाली पेट खाय तो उसे जीवनमें पक्षाघात होनेकी सम्भावना नहीं रहती है। हींग वातका नाश करनेमें पूर्ण सक्षम है।

७-जो मनुष्य वात-उत्पादक वस्तुओंका अधिक सेवन करते हैं, उनको पक्षाघातकी सम्भावना अधिक रहती है।

**पक्षाघात-चिकित्सा**—संसारमें रोग-निदानकी अनेक पद्धतियाँ प्रचलित हैं, जैसे—आयुर्वेदिक, होम्योपैथिक, मन्त्र-तन्त्र-यन्त्रचिकित्सा, सिद्धयोग, एलोपैथिक, योगासन, एक्वूप्रेशर, यूआईन थैरेपी, होलीहीलिंग, ध्यानयोग, सूर्य-ऊर्जा-जलचिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, चुम्बक-चिकित्सा आदि। यह अनुभवमें आया है कि आयुर्वेदिक तथा होम्योपैथी एवं मन्त्रचिकित्सासे पक्षाघात रोगको अधिकतम ठीक किया जा सकता है।





# अर्श या बवासीर

यह एक अत्यन्त कष्टप्रद रोग है—‘अरिवत् प्राणात् शृणाति हिनस्तीत्यर्थः।’ जिन्दगीको दूधर कर देनेवाले इस रोगसे ग्रसित व्यक्तिके कष्टका वर्णन करना कठिन कार्य है। मलद्वारके अंदर तीन वलि (आवर्त) होते हैं। इनकी शिराएँ जो श्लेष्मकलाके भीतर रहती हैं, प्रक्षुभित हो जानेसे यह रोग होता है। पतली शिराओंका एक जाल मलाशयको भीतर चारों ओरसे घेरे रहता है। इन्हीं शिराओंमें रक्तका संचय होकर फूलनेसे यह मस्सेका रूप ले लेता है। मलाशयके दीवारकी शिराएँ लंबाईमें फैली रहती हैं। क्रब्जसे पीडित व्यक्ति शौच जाते वक्त शीघ्रताके लिये जब नीचेकी ओर अत्यधिक जोर लगाते हैं तो इन शिराओंमें खून उतर आता है। बार-बार यह प्रक्रिया जारी रहनेपर उतरा हुआ रक्त वापस नहीं जा पाता। इस प्रकार दूषित रक्तके संचय होनेसे मांसांकुर या मस्से उत्पन्न हो जाते हैं। मलद्वारकी तीनों वलियों (आवर्तों)—में ये मस्से हो सकते हैं। अन्तिम वलीमें होनेवाले मस्से बाहरकी ओर दो-तीन संख्यामें या गुच्छेके रूपमें बाहर निकल आते हैं जो कि शौच जाते समय अत्यन्त कष्ट प्रदान करते हैं। ऊपरके पहले आवर्तको प्रवाहिकी कहते हैं। इसका कार्य मल और वायुको बाहर निकालना होता है। मध्यके आवर्तको सर्जनी कहते हैं। इसका कार्य भी मल और वायुको पूर्णतः बाहर निकाल देना है। तीसरे आवर्तका कार्य गुदाको संकुचित करके पूर्वावस्थामें लाना होता है। इन्हीं तीन आवर्तोंमें अर्श पैदा होता है। भीतरी मस्सेमें उतना दर्द नहीं होता, पर शौचके समय कष्ट होता है और रक्त निकलता है।

आयुर्वेदके अनुसार बवासीरके छः भेद होते हैं—(१) वातज, (२) पित्तज, (३) कफज, (४) सन्निपातज, (५) रक्तज और (६) सहज। सामान्यतः बवासीरके दो भेद माने गये हैं—बादी और खनी।

**लक्षण**—बवासीरके मस्सोंके प्रक्षुभित हो जानेपर शौचके समय भीषण कष्ट होता है। यहाँतक कि बैठनेमें भी दर्द होता है। शौचके समय खूनी बवासीरसे काफी मात्रामें रक्त निकलता है। कभी-कभी तो शौचके समय १००-२०० ग्राम रक्त निकल जाता है। अधिक चलनेसे मस्सेमें रगड़ होनेसे रक्तस्राव होने लगता है। रोगकी तीव्रावस्थामें किसी भी समय रक्तस्राव हो सकता है। मस्सोंमें सूजन और जलन लगातार होती रहती है। बादी बवासीरमें रक्त नहीं निकलता, पर सूजनके कारण शौचके समय तथा वायु निकलनेमें, चलने-फिरने और बैठनेमें भी बहुत कष्ट होता है।

**कारण**—अनियमित रहन-सहन, कड़वा-कसैला, नमकीन, खट्टा, चाय-कॉफी, मिर्च-मसालासे युक्त बासी एवं गरिष्ठ भोजन, मद्यपान, अजीर्ण तथा क्रब्ज बने रहना, शौचके समय खूब जोर लगाना, काफी देरतक एक ही स्थानपर बैठे रहनेका कार्य करना, दिवाशयन, वात-पित्त-कफका प्रकुपित होना इत्यादि बवासीर होनेके प्रमुख कारण हैं। चरकने गर्भपात, गर्भावस्था तथा विषमप्रसूतिको भी अर्शका कारण माना है; क्योंकि इनसे भी गुदाकी शिराओंमें दबाव पड़ता है—‘स्त्रीणामामगर्भंश्राद् गर्भोत्पीडनाद् विषमप्रसूतिभिश्च।’ अधिक ठंडे स्थानपर देरतक बैठे रहनेसे भी गुदाकी शिराओंके संकुचित हो जानेसे अर्श उत्पन्न हो जाता है। मद्यका अत्यधिक सेवन पित्तज अर्शकी उत्पत्ति करता है।

**रोगकी साध्यता**—जो बवासीर अन्तिम बाहरी आवर्तमें होती है और १ वर्षसे अधिक समयकी नहीं होती, उसकी चिकित्सा साध्य है। दूसरे आवर्तमें उत्पन्न मांसांकुर कष्टसाध्य होता है। जो बवासीर बहुत समयकी हो, वात-पित्त एवं कफ तीनों दोषोंके प्रकुपित होनेसे हो, गुदाके भीतरकी पहली सबसे भीतरके आवर्तमें उत्पन्न हो, वह प्रायः असाध्य होती है—

बाह्यतः सुखसाध्यः स्यान्मध्ये कष्टेन सिद्ध्यति ।

असाध्योऽन्तर्वली जातो..... ॥

(हारीत)

अर्शकी उचित चिकित्सा नहीं करनेसे, निरन्तर अहितकर आहार-विहार करते रहनेसे मलाशयमें शोथ हो जाता है तथा फोड़ा, भगन्दर आदि महाकष्टकारी असाध्य रोग हो जाते हैं। अतः प्रारम्भमें ही इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

**चिकित्सा**—बवासीरकी चिकित्सामें यह ध्यान रखना चाहिये कि किसी भी प्रकारसे क़ब्ज़ न रहे। क़ब्ज़के लिये निम्न योग लेना चाहिये—

(अ) प्रातः सुखे आँवलेका चूर्ण २ ग्राम।

(ब) दोपहरको ईसबगोलकी भूसी १० ग्रामकी मात्रामें नीब-पानीके साथ।

(स) रातको सोते समय १० ग्राम त्रिफलाचूर्ण दूधके साथ लें। इसके अतिरिक्त दो हरें भी पानीके साथ निगल सकते हैं।

**होमियोपैथी**—होमियोपैथीके अनुसार अर्शकी सद्यः-  
लाभकारी एक अनूभूत चिकित्सा इस प्रकार है—

(अ) प्रातः सल्फर-३० शक्तिकी ५-६ गोलियाँ खाली

पेट लें।

(ब) एस्क्यूलस मूल अर्क ४ बूँद आधा छटाँक पानीमें डालकर प्रत्येक चार घंटेपर लें। यदि रक्तस्त्राव भी होता है तो हेमामेलिस मूल अर्क ४ बूँद आधा छटाँक पानीमें डालकर प्रत्येक चार घंटेपर लें।

(स) रातको सोते समय नक्सवोमिका-२०० शक्ति एक खुराक लें। ध्यान रहे कि औषधियाँ लेनेके आधे घंटे पहले या बादमें कुछ भी न खाये-पियें।

होमियोपैथी-औषधि खाली पेट लेनी चाहिये। होमियोपैथी-औषधियाँ लक्षणके अनुसार दी जाती हैं। एक ही रोगमें भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंके लिये लक्षणके अनुसार भिन्न औषधि चयन की जाती है। किसी एक रोगके लिये एक ही दवा नहीं होती। उक्त औषधिसे अनेक रोगियोंको सद्यःलाभ हुआ है। जो व्यक्ति अनेक औषधि करके निराश हो चुके हैं और ऑपरेशनके अतिरिक्त कोई मार्ग न बचा हो, उन्हें अवश्य इस अनुभूत औषधिका परीक्षण करना चाहिये।

**आयुर्वेदिक योग—**(१) (क) भोजनके बाद दो चम्मच अभयारिष्ट समान जलसे लें।

(ख) काले तिलका चूर्ण तथा भिलावेका चूर्ण समान मात्रामें लेकर मट्टेके साथ दो-तीन बार पियें।

(ग) बेलका मुरब्बा या कच्चे बेलको भूनकर खायें।

(घ) सूरनका भरता लाभप्रद है।

(ङ) कोष्ठशुद्धिके लिये एरण्डका तेल पीना चाहिये। दर्द तथा जलनके स्थानपर भाँग अथवा अफीम बाँधनी चाहिये।

(च) गायके दूधके मट्टेमें लवणभास्करचूर्ण मिलाकर प्रातः और दोपहरमें पियें। मट्टेका अधिकाधिक सेवन करें।

(२) करेलेके रसमें मिस्त्री मिलाकर पीनेसे बवासीरमें लाभ पहुँचता है।

(३) रसौत ७ ग्राम, मुनक्का बीजसहित १४ ग्राम और कतीरा ७ ग्राम—इनको कूट-पीसकर महीन चूर्ण बनायें। छोटी बेरके बराबर इसकी गोलियाँ बनाकर प्रतिदिन सुबह-शाम सेवन करें।

(४) कमलकी केशर, शहद, ताजा मक्खन, नागकेशर और चीनी एकमें मिलाकर खायें। यह रक्तार्शमें हितकर है।

(५) लाल चन्दन, चिरायता, धमासा और सोंठ समान मात्रामें लेकर काढ़ा बनाकर पियें।

(६) (क) चन्द्रप्रभावटी सुबह-शाम एक-एक गोली

दूधके साथ लें।

(ख) कुमार्यासव दो चम्मच तथा दशमूलारिष्ट दो चम्मच मिलाकर समान जलसे भोजनके बाद दिनमें दो बार लें।

**क्षारसूत्र-चिकित्सा—**इस पद्धतिमें क्षारसूत्रद्वारा मस्सोंको बाँध देते हैं। सूत्रमें लगे क्षार अपने औषधीय गुणोंसे मस्सोंको काट देते हैं। मस्सोंमें अपामार्गक्षार, उदुम्बरक्षार, स्त्रूहीक्षार नियमित रूपसे लगानेपर मस्से सूखकर बाहर निकल जाते हैं। बड़े मस्सोंके लिये क्षारसूत्रका प्रयोग करते हैं। मजबूत धागेपर हलदी, क्षार एवं स्त्रूहीके दूधकी क्रमशः २१ परतें चढ़ाकर सुखानेके बाद क्षारसूत्र तैयार होता है। क्षारसूत्रसे मस्सेको कसकर बाँध देते हैं। जिससे बँधे स्थानपर मस्सा कटता जाता है और घाव भी स्वतः ठीक होता जाता है। प्रत्येक सप्ताह क्षारसूत्र बदल दिया जाता है। क्षारसूत्र लगवानेके घंटे-दो-घंटे बाद सामान्य रूपसे कार्य किया जा सकता है। इस समय अर्शोग्री वटी, शोभांजन वटी लें तथा मस्सोंपर जात्यादि तेल लगाना चाहिये। हृदयरोग, मधुमेह, मोटापा, अल्सर और टी०बी०के रोगीको क्षारसूत्र नहीं लगाना चाहिये। पहले इन रोगोंकी चिकित्सा करनी चाहिये।

**एलोपैथी—**एलोपैथी चिकित्सा-पद्धतिमें क्रब्जके लिये विरेचक औषधियोंको देते हैं। शौचमें कष्ट दूर करनेके लिये कुछ मलहम आदिका प्रयोग करते हैं। रोगकी तीव्रावस्थामें मस्सोंका ऑपरेशन कर देनेपर आरोग्य हो जाता है। पथ्य-परहेज इसमें भी पर्याप्त मात्रामें अपेक्षित हैं। एलोपैथीमें इसका कोई स्थायी उपचार नहीं है। यह ध्यान रखना चाहिये कि एक बार स्वस्थ होनेके बाद अपने रहन-सहन और खान-पानको ठीक रखें, अन्यथा इस कष्टदायी रोगसे पुनः ग्रस्त होनेकी सम्भावना रहती है।

**पथ्य—**नेनुआ, तुरई, लौकी, मूली, खीरा, पपीता (कच्चा एवं पका), भिंडी, पुराना चावल, मूँगकी दाल, कुलथीकी दाल, बथुआ, करेला, टमाटर, सूरन, मिस्त्री, किशमिश, इलायची, मट्ठा, गोमूत्र, चोकरयुक्त आटेकी रोटी अर्शरोगमें हितकर है।

**अपथ्य—**खट्टा, मिर्च-मसाला, बासी एवं गरिष्ठ भोजन, पिट्टी, उड़द, तले-भुने पदार्थ, कोहड़ा, बैंगन, अरबी, बंडा, आलू, मल-मूत्र और अपानवायुके वेगोंको रोकना, दिवाशयन, अत्यधिक चलना-फिरना और परिश्रमसाध्य कार्य करना।



## शिरावेध—एक दृष्टि

( डॉ० श्रीसुरेश्वरजी द्विवेदी एम्०ए०, पी-एच्०डी०, बी०ए० एम्०एस्० )

प्राचीन कालमें आयुर्वेद अत्यन्त उन्नत अवस्थामें था। सम्पूर्ण जीवधारी इसकी छत्रछायामें सुखपूर्वक रहते हुए अपने जीवनयापनमें अनुरक्त थे। समय-समयपर ऋषियोंने मानवका कल्याण करते हुए आयुर्वेदका बहुमुखी विकास किया; क्योंकि रोग रोगी व्यक्तिको दुर्बल करते हुए असमयमें ही उसके शारीरिक चेष्टाओंका नाश कर देता है तथा शरीरको कष्ट देते हुए इन्द्रियोंकी शक्तिका हास कर पुरुषार्थ-चतुष्टयकी प्राप्तिमें बाधा उत्पन्न करके प्राणोंका हरण कर लेता है। अतः जीवोंके कष्टनिवारणार्थ जैसे आधुनिक चिकित्सा-पद्धति एक-एक रोगों तथा अङ्गोंके आधारपर अलग-अलग विभागोंमें विभक्त है, उसी प्रकार प्राचीन समयमें भी आयुर्वेद अपनी विकास-परम्परा एवं चिकित्सा-सौकर्यकी दृष्टिसे आठ अङ्गों—(१) शल्य, (२) शालाक्य, (३) काय, (४) भूतविद्या, (५) कौमारभृत्य, (६) अगदतन्त्र, (७) रसायनतन्त्र तथा (८) बाजीकरणतन्त्र—में विभक्त था।

महर्षि सुश्रुतकृत 'सुश्रुतसंहिता', आयुर्वेदीय चिकित्सकोंका हृदय है। जो वर्तमानमें हम लोगोंके सामने अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करती है। भारतीय महर्षि-परम्पराओंमें महर्षि सुश्रुत प्रधान चिकित्सक एवं शल्यकर्ता (प्लास्टिक सर्जन) माने जाते हैं। उन्होंने अपने गहन आयुर्वेदिक ज्ञानद्वारा वाराणसी ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण बृहत्तर भारतको गौरवान्वित किया था। आधुनिक युगमें विकसित चिकित्सापद्धति होनेके बावजूद सुश्रुतसंहिताकी चिकित्सापद्धति अत्यन्त सशक्त एवं अद्भुत है।

### आयुर्वेदका मुख्य उद्देश्य

आयुर्वेदका मुख्य उद्देश्य है 'स्वस्थस्य स्वास्थ्य-  
रक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च ॥' स्वस्थ व्यक्तिके स्वास्थ्यकी  
रक्षा करना तथा रोगीको रोगोंसे मुक्त करना आदि। इसी  
शृंखलाका प्रधान अङ्ग शिरावेध है। सुश्रुतसंहिताके शारीरस्थानके  
आठवें अध्यायमें शिरावेधका विस्तृत वर्णन है, जैसे—

अथातः शिराव्यधविधि शारीरं व्याख्यास्यामः ॥ यथोवाच  
भगवान् धन्वन्तरिः ॥

शिराका वेध या वेधन शिरावेध कहा जाता है। रक्तज एवं वातादि दोषोंसे रक्तके दूषित होनेपर रोगकी शान्ति-हेतु शिरावेध आवश्यक है। रोगोंके सम्बन्धमें देखा गया है कि जीर्ण ज्वर आदिमें अनेक चिकित्साओंके असफल होनेपर शिरावेधसे पूर्ण लाभ मिला। वातादिद्वारा रक्तके विकृत होनेपर शारीरिक एवं मानसिक रोग भी हो जाते हैं। अतः उन्माद, अपस्मार, मद, मोह, मूर्च्छा, हृदयके जकड़न आदि अनेक रोगोंमें उनकी शान्ति-हेतु शिरावेध आवश्यक है। शिरा सम्पूर्ण शरीरका रक्त संवहन करती है, अतः शिराओंमें वेधन करनेपर रोग शान्त हो जाता है। कुष्ठरोगके प्रारम्भमें यदि बार-बार रक्त-विस्त्रावण कर दिया जाय तो कुष्ठ शान्त हो जाता है, शिरावेधसे अनेक लाभ देखा गया है। स्वस्थ व्यक्तिको भी कभी-कभी शिरावेध कराते रहना चाहिये, उससे चर्म-रोग, ग्रन्थि-विकार तथा रक्तज रोग नहीं होते। रक्तज रोगोंके सम्बन्धमें कहा गया है—

शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैरुपक्रान्ताश्च ये गदाः ।

सम्यक् साध्या न सिध्यन्ति रक्तजान् तान् विभावयेत् ॥

शीत, उष्ण, स्निग्ध एवं रूक्ष आदि औषधियोंसे चिकित्सा करनेपर सामान्य रोग भी जो ठीक नहीं होते, उन्हें रक्तज रोग समझ कर शिरावेधका स्मरण कर लेना चाहिये। गुल्म, प्लीहा आदि रोगोंमें वैद्य अपने अभ्यासके अनुसार रक्त-मोक्षण करे।

कुछ समय पूर्व एक चिकित्साशिविरमें अनेक रोगियोंकी शिरावेध-चिकित्साके आशातीत परिणाम सामने आये। सियाटिकाके अधिकाधिक रोगी तत्काल चलने-फिरने तथा आराम अनुभव करने लगे।

शिरावेधके समयके विषयमें इस प्रकारका वर्णन मिलता है—वर्षा-ऋतुमें जब आकाशमें बादल न हों, हेमन्तमें मध्याह्नमें, उष्णमें प्रातः या सायंकाल विधान है। अधिक दोष होनेपर थोड़ा-थोड़ा करके कई बार रक्त-मोक्षण करना चाहिये। मांसल स्थानोंमें यवके बराबर तथा अन्यत्र आधा यव वेध करना चाहिये। वेध होनेपर वायुसे दूषित रक्त कालापन एवं लाल तथा पित्तसे दूषित नीलापन या पीला,

कफसे दूषित हल्का सफेद एवं लाल तथा त्रिदोषमें गोमूत्र या क्वाथके रंगका निकलता है। शिरावेध शल्यतन्त्रमें आधी चिकित्सा है, जैसे—कायमें वस्ति-चिकित्सा।

### अकुशल वैद्यद्वारा अधिक रक्त- विस्त्रावणसे कुप्रभाव

शिरःशूल—शिरोरोग, आँखके रोग एवं अन्धापन, तिमिर, धातुक्षय, आक्षेप, लकवा, अर्दित (मुखका लकवा), एक अङ्गमें वैषम्य, तृष्णा, दाह, हिचकी, कास, श्वास, पाण्डु आदि रोगोंमें अकुशल वैद्यकी चिकित्साद्वारा कभी-कभी मृत्यु भी हो जाती है।

### रक्त-विस्त्रावणसे अन्य लाभ

रक्ताधिक्ये रक्तमोक्षः पादे वह्नौ ललाटके।

कर्तव्यो रक्तरोगेषु कुष्ठिनां च विशेषतः॥

यदि रक्ताधिक्य या रक्तभार हो तो रोगीके बलाबल तथा रोगको देखकर पैर-हाथ या ललाटकी वेध्य शिराओंमें मर्मस्थानको बचाते हुए शिरावेध करे। रक्तमोक्षणसे रक्ताधिक्यमें बढ़ा हुआ रक्तदाब (ब्लडप्रेसर) घटता है तथा उसका विष भी (टॉक्सिन्स) बहुत कुछ कम हो जाता है।

### सुश्रुतके अनुसार रोग-स्थान एवं शिरावेध

पैरमें जलन (पाद-दाह), पाद-हर्ष, चिप, विसर्प, वातरक्त, एग्जिमा (विचर्चिका) तथा बेवाई (पाददारी)—इन रोगोंमें क्षिप्र मर्मसे दो अंगुली ऊपर शिरावेध करे। क्षिप्र मर्म दोनों हाथ तथा दोनों पैर, चौथी अंगुली एवं अँगूठेके मध्य कुछ अंदर होता है। श्लीपदरोग (फीलपाँव)—में अँगूठे एवं गुल्फके ऊपर शिरावेध करे। क्रोष्टुशीर्ष खंज, पंगुल तथा वात-वेदनामें पैरमें गुल्फके चार अंगुल ऊपर शिरावेध करे। अपचीमें इन्द्र-वस्ति मर्मके दो अंगुल नीचे, गृध्रसी (सियाटिका)—में जानु-सन्धिके चार अंगुल ऊपर या नीचे, गलगण्डमें ऊरु-मूलकी शिराका वेध करे। जबकि गलगण्ड-रोग (घेघा) गलेमें होता है, पर शिरावेध घुटनेके नीचे जंघामें करनेका विधान है। शिरा सर्वाङ्गशोधनी होती है—ऐसा महर्षि सुश्रुतका कथन है। इस तरह दोनों हाथ तथा दोनों पैरोंमें शिरावेध समझना चाहिये। प्लीहारोगमें बायीं बाँहके बीच कूर्पर-सन्धिके समीप या पहली

(कनिष्ठिका) और दूसरी (अनामिका)—के मध्य शिरावेध करे। इसी प्रकार यकृत आदि उदर-रोग तथा कास-श्वासमें दक्षिण बाहुमें, विश्वाची रोगमें सियाटिकाके समान शिरावेध करे। परिवर्तिका, उपदंश, शूक और शुक्रके रोगोंमें मेहन (शिश्र)—के मध्यमें, मूत्रवृद्धिमें वृषणोंके बगलमें तथा उदकोदरमें नाभिके नीचे सीवनीके बायीं तरफ शिरावेध करे। विद्रधि और पार्श्वशूलमें वाम कक्षा तथा स्तनके बीच, बाहुशोष और अवबाहुक रोगमें कंधेके मध्यमें शिरावेध करनेका कई आचार्योंका मत है। तृतीयक ज्वरमें त्रिक-संधिके मध्यकी शिराका, चतुर्थक ज्वरमें पार्श्वमें स्कन्धसंधिके नीचे, अपस्मार (मृगी)—में हनुसंधिके मध्यमें, उन्मादमें शंख तथा केशान्त, संधिगत, वक्षःस्थल, अपाङ्ग और ललाटमें रहनेवाली मर्मरहित वेध्यशिराओंका वेध करे। जिह्वा और दन्तके रोगोंमें जीभके नीचे रहनेवाली शिराओंका, तालुके रोगोंमें तालुमें, कर्णपीड़ा और कानके रोगोंमें कानोंके ऊपर, चारों तरफ गन्धका ग्रहण न होनेपर और नाकके रोगोंमें नाकके अग्रभागमें शिरावेध करे। तिमिररोग, अक्षि-पाक आदि रोगोंमें नाकके समीप ललाटकी या अपाङ्गकी शिराओंका वेध करे। शिरारोग, अधिमन्थ आदि रोगोंमें इन्हीं शिराओंमें वेध करे।

### शिरावेधके अधिकारी

अजानता गृहीते तु शस्त्रे कायनिपातिते।

भवन्ति व्यापदश्चैता बहवश्चाप्युपद्रवाः॥

(सुश्रुत० शारी० ८।२१)

शल्य-कर्ममें अज्ञ व्यक्ति—जिसे शल्यशास्त्रका पूर्ण ज्ञान नहीं है तथा जिसने विधिपूर्वक सुश्रुतसंहिताका शारीर-स्थान गुरुमुखसे पढ़ा नहीं है, वह यदि रोगीके शरीरपर शस्त्र चलाये तो पूर्वोक्त बहुत-से रोग उत्पन्न होते हैं तथा रोगीके शरीरको अत्यन्त कष्ट होता है और मृत्यु भी हो सकती है। अतः शिरावेधके ज्ञान-हेतु गुरु-सांनिध्यमें शिरावेध-कर्मका अभ्यास करना आवश्यक है। प्राचीन यूनानी चिकित्सा-पद्धतिमें भी शिरावेधका संक्षिप्त वर्णन प्राप्त होता है, यह रक्तविस्त्रावण-चिकित्सा अत्यन्त प्राचीन है।



४- चरक शास्त्री अ० १। ५- चरक शास्त्री अ० १। १३३-१३४

( ५ ) परिणाम-ज्ञापन—‘अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शभम्’ के अनुसार कर्मका फल अवश्य भोगना पडता

है। यह भावना रोगीके हृदयमें आ जाय तो भावरोग दूर है।

हो जाता है। परिणाम-ज्ञापनका प्रभाव उसके क्रम, प्रकार, कालपर निर्भर करता है। त्रुटि होनेसे रोग तो बढ़ता ही है, चिकित्सा और चिकित्सकके प्रति उपेक्षा और क्रोध उत्पन्न हो जाता है। इसलिये परिणाम-ज्ञापनमें शीघ्रता नहीं होनी चाहिये। रोगीके पुत्र या पत्नी आदिपर घटित अप्रिय घटनाओंका कारण उसके कर्मोंपर नम्रतापूर्वक थोपनेसे लाभ होता है। भारतमें रावण और दुर्योधन तथा विदेशोंमें हिटलर, मुसोलिनी, नेपोलियन आदि प्रसिद्ध उदाहरण रखने योग्य हैं। बड़े-से-बड़े डाकूका अन्त दुःखद होता है। भावरोगीके कर्मोंका परिणाम उसे और उसके प्रिय परिवारको अवश्य भुगतना पड़ेगा—यह विवेकपूर्वक ज्ञापित कर देना चाहिये।

(६) युक्त्याश्रयण—ऊपर भावरोगकी दैवबल व्यापाश्रय एवं सत्त्वावजय-चिकित्सा बतायी गयी है। अब आयुर्वेददृष्ट्या युक्ति-व्यापाश्रय-चिकित्सा वर्णित होगी। यह ध्यान रहे कि भावरोग मूलतः मानस-व्याधि है। उसमें ज्ञान-विज्ञान-धैर्य-स्मृति-समाधिसे सत्त्वावजय-चिकित्सा प्रभावकारी होगी। यह भी ध्यातव्य है कि कामसे वायु कुपित होता है। कफसे लोभ होता है और क्रोधसे पित्त कुपित होता है, तब खून खौलने लगता है। दिमाग गरम हो जाता है। आँखें लाल हो जाती हैं। काम और भयमें मांसपेशियोंके संकोचसे रोमाञ्च होता है। कुल मिलाकर मानस-दोषसे शारीरिक दोष एवं दृश्य प्रभावित होते हैं। अतः युक्तिव्यापाश्रय चिकित्सा भी करें। अतत्त्वाभिनिवेश और अपस्मारमें कही गयी चिकित्सा वमन-विवेचनको छोड़कर भावरोगमें लाभदायी होती है। यथासम्भव सौम्य और बुद्धिवर्धक प्रयोग करना चाहिये।

ओषधियाँ—पञ्चगव्य या महापञ्चगव्यघृतमेंसे किसी एकको ५ ग्रामसे लेकर १० ग्रामकी मात्रातक प्रातः ८ बजे और अपराह्न ४ बजे ब्राह्मीस्वरस २० ग्राम या शंखपुष्पी स्वरस २० ग्रामके अनुपानसे देनेसे लाभ होता है। केवल मीठा बच या मीठा कूटका चूर्ण १ ग्रामकी मात्रासे प्रातः-सायं उपर्युक्त अनुपातोंसे प्रयोग करनेसे भी लाभ होता

उत्तम कपूर बरास (अभावमें देशी ढोंकावाला कपूर) लोभ-काम-क्रोध (कफ, वात, पित्त) में लाभदायी है। १२५ मि० ग्रा०से लेकर २५० मि० ग्रा० तककी मात्रा दिन-रातमें एक बार या दो बार पर्याप्त है। चीनी या पेड़ाके भीतर अथवा कैप्सूलमें डालकर सादा जल या उपर्युक्त किसी स्वरस १० ग्रामसे लेना चाहिये। ऊपरसे एक घण्टातक दूध नहीं पीना चाहिये। तीन दिनसे अधिक लगातार प्रयोग करनेसे नपुंसकता होगी, जो छोड़ देनेसे ठीक हो जायगी।

पथ्य—सादा सात्विक आहार, गोदुग्ध, घी, दही, छेना मधुर पदार्थ विशेष हितकारी हैं। सौम्य, नमकीन पदार्थ, दाल-भात, रोटी-तरकारी आदि भी पथ्य हैं। सद्वृत्तका अनुपालन, राग-द्वेषरहित विचार पथ्य है।

अपथ्य—राजस और तामस आहार, उष्ण, कटु, तीक्ष्ण, चरपरा, बासी, अपवित्र आहार, मांस-मदिरा अपथ्य हैं। एकान्तमें विपरीत लिंगी अपथ्य हैं। बुरे और अपराधी प्रवृत्तिके लोगोंसे बचना चाहिये।

साध्यासाध्य—नम्रता, आस्तिकता, समर्पण-भावना आदि लक्षणोंका उदय और चिकित्सा-सुलक्षण साध्य लक्षण हैं। इनके विपरीत और चिकित्साका उलटा परिणाम क्रूरता आदि दुर्गुणोंमें वृद्धि, मद्य, आमिषमें अधिक प्रवृत्ति असाध्य लक्षण हैं।

### आरोग्य-लक्षण

सत्त्वलक्षणसंयोगो भक्तिर्वैद्यद्विजातिषु।

साध्यत्वं न च निर्वेदस्तदारोग्यस्य लक्षणम् ॥<sup>१</sup>

और भी—

आरोग्याद् बलमायुश्च सुखं च लभते महत्।

इष्टांश्चाप्यपरान् भावान् पुरुषः शुभलक्षणः ॥<sup>२</sup>

याद रखें कि निर्वेदका तात्पर्य अनुत्साह और आत्मामें अनवज्ञासे है। भावरोगसे बचने और निकलनेके ये उपाय सम-सामयिक युगमें नितान्त आवश्यक हैं। मनुष्यका कल्याण भावरोगसे निर्मुक्त होकर वास्तविक स्वास्थ्यसे ही सम्भव है।



**‘एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि’**

( श्रीश्यामनारायणजी शास्त्री सा०र०, रामायणी )

जिस प्रकार स्थूल शरीरमें अनेक प्रकारके रोग होते हैं, उसी प्रकार सूक्ष्म शरीरमें भी अनेक प्रकारके रोग होते हैं। श्रीरामचरितमानसके उत्तरकाण्डमें श्रीगरुड़जी श्रीकाकभृशृण्डिजीसे कहते हैं—

मानस रोग कहहु समुझाई । तुम्ह सर्बग्य कृपा अधिकाई ॥

इसपर श्रीभृशुण्डिजी कहते हैं—

सुनह तात अब मानस रोगा । जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा ॥

मानसरोगोंका परिचय देते हुए सर्वप्रथम समस्त मानसरोगोंका मूल मोहको सिद्ध करते हुए वे कहते हैं—

मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला ।

अर्थात् समस्त व्याधियोंका मूल—आदि कारण मोह ही है और इसीसे सभी व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। वास्तवमें अविवेकताका मूल कारण देहाभिमान—अज्ञान ही है। शोक अज्ञानसे होता है। शरीरादिमें अहंबुद्धि मात्र अज्ञानसे ही होती है—

‘यदा नाहं तदा मोक्षो यदाऽहं बन्धनं तदा’।

मैं अरु मोर तोर तैं माया । जेहि बस कीन्हे जीव निकाया ॥

जन्म-मरण-रूप संसार हर्ष, शोक, भय, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णा आदि सभी मिथ्या अहंकार-भावके कारण ही होते हैं।

मोह निसाँ सब् सोवनिहारा । देखिअ सपन अनेक प्रकारा ॥

सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ।

जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोड़ ॥

जिस प्रकार स्थूल शरीर वात, पित्त तथा कफके आधारपर आधारित है, उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर भी कामरूपी वात, क्रोधरूपी पित्त तथा लोभरूपी कफके आधारपर स्थित है। इन्हीं तीनोंकी प्रधानतासे ही स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरकी समस्त व्यवस्था चलती है। इनकी समस्त क्रियाओं एवं व्यवस्थाओंका वर्णन मानसमें काकभुशुण्डिजीने गरुड़जीके सम्मुख किया है। इनका क्रमशः परिचय दिया जा रहा है। सर्वप्रथम समस्त व्याधियोंका मूल मोहका वर्णन किया गया है तथा मोहसे अनेक प्रकारके उत्पन्न होनेवाले शूलोंका भी स्पष्टीकरण हुआ है। यथा—

तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला ॥

जिस प्रकार आयुर्वेदमें रोगोंका मूल कारण कुपित मलको बताया गया है—‘सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ।’

वैसे ही व्याधियों एवं मनोविकारोंका मूलहेतु मोह बताया गया है—

मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला ।

मोह अविवेकको कहते हैं, जिससे प्राणी अपने यथार्थ स्वरूपको भूलकर इस शरीरको ही आत्मा मानता है। अविवेकताका मूल कारण देहाभिमान ही है। देहाभिमानसे ही अज्ञान उत्पन्न होता है। जन्म, मृत्यु, जरा आदि अवस्थाएँ अज्ञानसे ही होती हैं। इसी कारण मोहको समस्त व्याधियोंका मूल कहा गया है।

दैहिक ( बाह्य ) रोग एवं उनके नाम—वात, पित्त, कफ, संनिपात, दाद—खुजली, क्षय, कुष्ठ, डमरुआ ( गाँठका रोग ), नहरुआ ( नसोंका रोग ), जलोदर, तिजारी, वातज्वर, शीतज्वर आदि ।

**एक साथ ही दैहिक तथा मानसिक रोगोंका लक्षण एवं प्रभाव**—कामको वातरोग, लोभको कफरोग तथा क्रोधको पित्तरोग कहा गया है—

काम बात कफ लोभ अपारा । क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥

कामकी उपमा वातसे दी गयी है—यह कफ और पित्तको जहाँ ले जाता है, वहीं जाकर मेघकी भाँति वर्षा करता है। आयर्वेदमें यही वर्णन किया गया है—

पित्तः पंगुः कफः पंगुः पंगवो मलधातवः ।

वायुना यत्र नीयन्ते तत्र वर्षन्ति मेघवत् ॥

**काम-बात**—कामका एक अर्थ है काम। इसे स्मर, मनसिज, मनोज आदि नामोंसे जाना जाता है। दूसरा अर्थ है कामना। इस लोकमें इसकी प्रसिद्धि अभिलाषा, मनोरथ, इच्छा, आशा आदि नामोंसे है।

प्रथम कामका अर्थ है स्मर। इसकी जगत्में बड़ी महिमा है। इसके बिना सृष्टिका कार्य ही नहीं चल सकता। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें स्वयं कहा—



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥

शास्त्रीय परम्परानुसार इसका निर्वाह करनेसे लोक-परलोक दोनों ही बनते हैं। अमर्यादित रूपसे इसकी सर्वत्र निन्दा भी की गयी है।

**काम ( कामना )-का दूसरा अर्थ—**विषयी प्राणीको रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श-सम्बन्धी नाना-प्रकारके मनोरथोंका होते रहना। उनकी पूर्ति आजतक संसारमें किसीको सर्वांशमें नहीं हो पायी। फिर भी प्रायः सभीको अहर्निश मनोरथ-चाहना सभी प्रकारसे होती चली आ रही है। गीताके द्वितीय अध्यायमें इसकी विशद व्याख्या की गयी है। विषयोंका चिन्तन करते-करते विषयोंमें आसक्ति हो जाती है। उससे उस विषय-प्राप्तिकी कामना, कामना न सिद्ध होनेपर क्रोध, क्रोधसे कर्तव्याकर्तव्यके विवेकका अभाव, उससे सत्कर्तव्य करनेकी स्मृतिका नाश, पश्चात् इन्द्रिय-विजयका विवेक नष्ट होनेसे आत्मज्ञान प्राप्त करानेवाली दृढ़ बुद्धिका नाश और अन्तमें बुद्धिनाश होनेपर विषयी संसार-सागरमें ही डूब जाता है।

वासना जिसके जीवनमें होती है, उसे दुःख देती है। एककी पूर्तिसे ही दूसरीका जन्म होता है। विषयी प्राणी सोचता है हमने भोगोंको भोग लिया। वास्तवमें बात उलटी ही होती है। विषयोंने विषयी प्राणीको भोग लिया—

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः ।

परम प्रतापी चक्रवर्ती नरेन्द्र महाराज ययातिने अपने जीवनका अनुभव गम्भीर रूपसे इस प्रकार वर्णन किया है—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।

हविषा कृष्णावर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥

अर्थात् विषयोंके उपभोगसे कामनाओंकी शान्ति नहीं होती, अपितु जलती हुई अग्निमें घी डालनेकी भाँति उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। गोस्वामी तुलसीदास भी इसी बातको कहते हैं—

बुझै कि काम अग्नि तुलसी कहूँ, बिषय-भोग बहु घी ते।

इसकी शान्तिका एकमात्र उपाय है संतोष—

बिनु संतोष न काम नसाहीं । काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं ॥

‘कफ लोभ अपारा’-जैसे स्थूल शरीरमें कफका पार नहीं, वैसे ही मानसिक शरीरमें लोभका भी पार नहीं। विषय-प्राप्तिकी प्यासको ही तृष्णा कहते हैं। यह प्यास

कभी भी मिटती नहीं। जितनी भी मिलती जाय उत्तरोत्तर उतनी ही बढ़ती जाती है। समस्त अङ्ग ही वृद्धावस्थामें शिथिल हो जाते हैं, किंतु तृष्णा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है—

जीर्यन्ते जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।

चक्षुःश्रोत्रे च जीर्येत तृष्णैका तरुणायते ॥

तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ।

वास्तवमें सर्वगुणसम्पन्न होनेपर भी थोड़ेसे भी लोभके कारण प्राणीकी शोभा उसी प्रकार शिथिल हो जाती है, जैसे सुन्दर शरीरमें श्वेत कृष्ठ हो जाय—

स्वल्योऽपि तान् हन्ति श्वित्रो रूपमिवेप्सितम् ।

गुन सागर नागर नर जोऊ । अलप लोभ भल कहइ न कोऊ ॥

‘क्रोध पित्त नित छाती जारा’—मानसिक शरीरमें क्रोधको पित्त कहा गया है। क्रोध अग्नि है। यह जिस शरीरमें रहता है, सर्वप्रथम उसीको जलाता है। फिर जिस-जिसका स्पर्श करता है वह भी बिना जले नहीं रह सकता। गर्म लोहेकी छड़से प्रहार करनेपर प्रथम अपना हाथ जलेगा फिर स्पर्श जिसका होगा उससे वह भी जलेगा ही। क्रोधरूपी पित्तरोग सदा छातीको जलाता रहता है। क्रोधको शान्तिसे ही जीता जा सकता है।

प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई । उपजइ सन्यपात दुखदाई ॥

जैसे दैहिक रोग कफ, वात और पित्त—तीनों प्रधान हैं, वैसे ही मानसिक शरीरमें कामरूपी वात, कफरूपी लोभ और पित्तरूपी क्रोध—ये तीनों प्रधान हैं। वैसे तो ये अकेले भी मानस-शरीरको पर्याप्त हानि पहुँचानेमें समर्थ हैं और यदि तीनों एक साथ हो जायँ तो अत्यन्त दुःख देनेवाला संनिपात रोग उत्पन्न कर देते हैं। जैसे त्रिदोषजन्य संनिपातमें प्राणी विमोहको प्राप्तकर अज्ञानी हो जाता है और रोम-रोममें सहस्रों सूई चुभानेके समान कष्ट होता है, वैसे ही काम, लोभ तथा क्रोधसे उत्पन्न व्यामोहमें प्राणीकी वाणी भी अव्यवस्थित—अविचारपूर्वक निकलती है।

सन्यपात जल्पसि दुर्बादा । भएसि कालबस खल मनुजादा ॥

‘ममता दादु कंडु इरषाई’—अर्थात् ममतारूपी दाद और ईर्ष्यारूपी खुजली—ये दोनों मानस-रोग हैं। ममतारूपी दाद जो खुजलानेमें हर्ष और बादमें दर्द होता है। शरीरसे उत्पन्न बाल-बच्चों तथा सम्बन्धियोंमें तथा इस जगत्के प्रति ममता होती है।

जिस प्रकार स्थूल शरीरमें आम-ज्वर एवं विषम-ज्वर होता है, उसी प्रकार सूक्ष्म शरीरमें अविवेक एवं मात्सर्यरूपी ज्वर हैं। दोनों ही देहेन्द्रिय-मनस्तापी हैं। इसी

कारण दोनों आम तथा विषम-ज्वरसे उपमित किये गये हैं।

मानस-रोगमें राग, द्वेष, हर्ष, विषाद, सुख, दुःख, संयोग, वियोग, भय, प्रीति, ईर्ष्या, ग्लानि, मत्सर, अविवेक आदि सब मानस-रोग हैं और—

एक व्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु व्याधि।

पीड़हि संतत जीव कहूँ सो किमि लहै समाधि॥

एक व्याधिके हो जानेपर रक्षा होनी कठिन हो जाती है, फिर यहाँ तो एक-एक असाध्य अनेकों व्याधियाँ हैं और सभी सबको हैं, फिर जीव किस प्रकारसे इन रोगोंसे छुटकारा पाये—इस प्रकार समझाते हुए रोगोपचारके विषयमें कहते हैं—

नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान।

भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान॥

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान—ये नियम हैं। श्रुति-स्मृति-सदाचारानुकूल आचरण ही आचार है, स्वधर्मानुष्ठान तप है, समदर्शित्व ज्ञान है, देवताओंके प्रीत्यर्थ द्रव्य-दान यज्ञ है, मन्त्रका बार-बार पाठ जप है, अपना स्वत्व हटाकर दूसरोंके स्वत्वका स्थापन करना दान है, इनका पालन करना धर्म है। ये सभी मानस-रोगोंकी औषधि हैं।

पथ्यापथ्य-विचार—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष, दम्भ, कपट-पाखंडादि समस्त विषयोंसे शास्त्रके अनुशासनके अनुसार ज्ञानके सेवन तथा बचावका उपाय ही करना पथ्यापथ्य है। मानस-रोगके लिये ये विषय ही कुपथ्य हैं। ये मुनियोंके हृदयमें भी थोड़ा-सा अवसर पाकर क्षोभ उत्पन्न कर देते हैं, फिर सामान्य जनोंकी तो बात ही क्या?

विषय कुपथ्य पाइ अंकुरे । मुनिहु हृदयँ का नर बापरे॥

उत्तम वैद्य—'सद्गुरु बैद बचन बिस्वासा'—जिस प्रकार वैद्य रोगीकी नाडी देखकर रोगको पहचानकर रोगीकी अवस्था और व्यवस्थाके अनुसार औषधिका विधान करता है, उसी प्रकार मानसरोगोंको पहचानकर उपचार करनेवाले सद्गुरु देव ही हैं। वे स्वयं ही अपने शिष्यरूपी रोगीके मानसिक रोगोंका तारतम्य सम्यक् प्रकारसे समझ कर 'भवरोगवैद्यम्' के नाते—

अमिअ मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू॥

अमृतमयी संजीवनी मूलका सुन्दर चूर्ण देते हैं जिससे—

दैहिक, दैविक, भौतिक ताप—त्रितापका सपरिवार नाश करके रोगीको अनुपानपूर्वक स्वस्थ करते हैं। किंतु रोगीको भी यह ध्यान रखना परमावश्यक होगा कि वह सद्गुरु वैद्यके बताये वचनपर—

संजम यह न बिषय कै आसा।

संयमका पूर्ण पालन कर सके। जिस भाँति रोगीको कुपथ्यसे बचना आवश्यक है, उसी भाँति साधकको भी विषयकी आशाका परम परित्याग सब प्रकारसे परमावश्यक है।

उत्तम संजीवनी बूटी तथा अनुपान—

रघुपति भगति सजीवन मूरी । अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥

भगवान्की भक्ति ही संजीवनी बूटी है और अति सुन्दर श्रद्धा ही अनुपान है। इस सुव्यवस्थाके द्वारा ही रोग नष्ट हो सकते हैं, अन्यथा करोड़ों यत्नोंसे भी नहीं होंगे।

जिस प्रकार असाध्य रोगोंकी शान्ति संजीवनी बूटीसे ही हो पाती है, उसी प्रकार मानसरोगोंको निर्मूल करनेमें भगवदाराधन ही परमावश्यक है। यह वेद-पुराणरूपी परम पावन पर्वतसे ही प्राप्त हो पाती है। वैद्यरूपी सद्गुरु ही इसे जानते हैं कि किस साधक (रोगी)-को इस बूटीका कितनी मात्रामें और किस अनुपानके साथ दिया जाय।

उत्तमोत्तम संजीवनी बूटीका प्रभाव एवं प्रमाण—यह उत्तम संजीवनी बूटी भगवान्की भक्तिके अन्तर्गत—'मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा' के रूपमें ही है।

निरामयं रामरसायनं पिब,

श्रीरामनामामृतमन्त्रबीजसंजीवनी चेन्मनसि प्रविष्टा।

हालाहलं वा प्रलयानलं वा मृत्योर्मुखं वा विशतां कुतो भीः ॥

इस राम-नामरूपी संजीवनीका पान करके ही शङ्कर-भगवान्ने हालाहल विषका पान कर लिया और निर्भयरूपसे उसे भी महत्त्व दिया—

हालाहलं विषं घोरं संजग्राहामृतोपमम्।

प्रभाव क्या था—

नाम प्रभाउ जान सिव नीको । कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥

भक्त प्रह्लाद, भक्तिमती मीरा, तुलसी, कबीर आदिके जीवनका सर्वस्व-सार-स्वरूप यही था। विशेष क्या भगवान् धन्वन्तरि जब समुद्र-मन्थनसे प्रकट हुए और समस्त ऋषि-देवताओंको औषधि, रोग-निदान, उपचारादिका सब वर्णन करनेके पश्चात् एक ही महौषधि समस्त ही रोगोंपर समान और सफल रूपमें कार्य करनेवाली कौन है?

इसपर कहा—

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।  
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥  
गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी भी यही कहते हैं—  
जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय मूल।  
स्वस्थताके लक्षण—

जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई। जब उर बल बिराग अधिकाई ॥  
जिस प्रकार स्थूल शरीरमें उत्तम स्वस्थताका लक्षण निरोगी होकर भूखका लगना है, उसी प्रकार मानस-शरीरकी स्वस्थताका भी लक्षण रोग-निवृत्त हो जानेपर तीव्र भूख लगना है। यहाँ तीव्र भूख क्या है? सुमतिरूपी क्षुधा। संजीवनी-भक्तिसे कुमतिकी नाश होकर हृदयमें विराग-बल बढ़ता है, तब सुमतिरूपी भूख तीव्रतासे बढ़ती है। परिणामतः सांसारिक प्रपञ्चोंसे विराग और भगवच्चरणानुराग दोनों ही एक साथ बढ़ते हैं और फिर साधक कृतकृत्य हो जाता है सुमति भूख प्राप्तकर। क्योंकि—

जहाँ सुमति तहाँ संपति नाना।

यही रोग-विनिर्मुक्त मनका वास्तविक लक्षण है।

रोग-विनिर्मुक्त-स्नान—

बिमल ग्यान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगति उर छाई ॥  
साधक (रोगी) विशुद्ध ज्ञान-जलसे जब स्नान करता है तभी श्रीरामभक्ति उसके हृदयमें छा जाती है। प्राणी जब पूर्ण स्वस्थ हो जाता है तो गर्म-जलसे स्नान करता है। साधककी आरोग्यताका लक्षण प्रबल वैराग्य है। सुमतिरूपी भूख लगी, उसका सेवन निरन्तर करते हुए, आशा-तृष्णाका त्याग करते हुए, प्रबल वैराग्य बढ़ाते हुए, विमल ज्ञान-जलसे स्नान करते हुए, श्रीरामभक्तिसे हृदय सराबोर करते हुए, भगवत्प्राप्ति करके जीवन कृतकृत्य हो जाता है—  
तापस तप फलु पाइ जिमि सुखी सिरानें नेमु ॥  
आगे फिर—

निरामयं रामरसायनं पिब।

—की कोटिमें धन्य होकर लक्ष्य-सिद्धि कर लेना है।



## भगवन्नाम-स्मरणसे रोग-निवारण

( डॉ० श्रीभीष्मदत्तजी शर्मा )

आजकल मानव-जीवनमें दिन-प्रतिदिन रोगोंका प्रकोप बढ़ता जा रहा है। नयी-नयी औषधियाँ भी आविष्कृत हो रही हैं और साथ-ही-साथ रोग भी बढ़ते ही जा रहे हैं। नये-नये रोग उत्पन्न होकर लोगोंको संतुष्ट कर रहे हैं। कैंसरकी समुचित चिकित्सा अभी भी जहाँ सम्भव नहीं हो पायी कि एड्स-जैसा भयंकर रोग संसारमें फैलता दिखायी दे रहा है। उच्च-निम्न रक्तचाप, हार्ट-अटैक, मधुमेह और पक्षाघात आदि न जाने कितने प्रकारके रोग आज मानव-जातिको पीड़ित किये हुए हैं। प्रतिदिन विश्वमें हजारों लोग इन भयंकर रोगोंसे मृत्युका ग्रास बन रहे हैं, परंतु चिकित्सा-विज्ञान आजतक इनके निवारणकी समुचित व्यवस्था नहीं कर पाया है। कारण स्पष्ट है कि आज संसारमें नास्तिकताका प्रभाव बढ़ता जा रहा है और ईश्वर, धर्म एवं शास्त्रसे विश्वास उठता जा रहा है। सनातन धर्ममें भगवन्नाम-स्मरणको सब प्रकारके रोगोंके निवारणका सरलतम तथा श्रेष्ठतम उपाय बताया गया है। यह वचन इस सम्बन्धमें उल्लेखनीय है—

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।

नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥

अर्थात् औषधिके रूपमें अच्युत, अनन्त तथा गोविन्द—इन नामोंका उच्चारण करनेसे सभी रोग नष्ट हो जाते हैं, यह मैं सत्य कहता हूँ, सत्य कहता हूँ।

नाम-जप

पुरीपीठके ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य अनन्तश्री स्वामी निरंजनदेवतीर्थजी महाराज तथा इसी पीठके वर्तमान जगद्गुरु शंकराचार्य अनन्तश्री स्वामी निश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराजके अनुसार उक्त श्लोकमें भगवान्‌के तीन नामों—अच्युत, अनन्त और गोविन्दका उल्लेख है। इन तीन नामोंका स्मरण (जप) इस प्रकार करना चाहिये—  
अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, गोविन्दाय नमः। इन नाम-मन्त्रोंका जप उठते-बैठते, सोते-जागते, चलते-फिरते सभी अवस्थामें करते रहनेसे सभी प्रकारके रोगोंसे तथा शारीरिक एवं मानसिक कष्टोंसे मनुष्यको मुक्ति मिल जाती है। इतना ही नहीं, इनका जप करते रहनेसे अनेक लौकिक कार्योंमें

भी सफलता मिलती है। भगवान् धन्वन्तरिके आदेशसे भगवान्‌के इन तीनों नाम-मन्त्रोंके जपसे सब प्रकारकी सफलता प्राप्त होती है और अकाल मृत्यु भी टल जाती है। यह अमोघ मन्त्र है। आबाल, वृद्ध, नर-नारी सभीको आधि-व्याधिसे मुक्त रहनेके लिये इन नाम-मन्त्रोंका यथाशक्ति जप करते रहना चाहिये।

## कर्मसिद्धान्त

भगवन्नाम-स्मरणसे रोग-निवृत्ति होनेके रहस्यको जाननेके लिये हमें शास्त्र-प्रतिपादित कर्मसिद्धान्तको समझना आवश्यक है। शास्त्रोंकी यह मान्यता है कि पूर्व जन्मके शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार ही हमें जीवनमें सुख-दुःख, रोग-शोक तथा दारिद्र्य आदि प्राप्त होते हैं। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने इसीलिये कहा है—

करम प्रधान बिस्व करि राखा । जो जस करइ सो तस फलु चाखा ॥

अर्थात् ईश्वरने संसारमें कर्मकी प्रधानता रखी है। अतः जो व्यक्ति जैसा (शुभाशुभ) कर्म करता है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। शुभ कर्मका शुभ फल और अशुभ कर्मका अशुभ फल होता है। हमारे शरीरमें जो भी रोग होते हैं, उनका कारण हमारे पूर्व जन्ममें अथवा इस जन्ममें किये हुए पापकर्म ही होते हैं। भगवन्नाम-स्मरण करनेसे पाप नष्ट होने लगते हैं और उसीके फलस्वरूप पापजन्य रोग भी निवृत्त होने लगते हैं। इसीलिये शास्त्रोंमें नित्यप्रति नियमितरूपसे भगवन्नाम-स्मरण करते रहनेको कहा गया है। वस्तुतः हरिनामके स्मरण करने अथवा जप करनेमें पाप-क्षयकी अपार शक्ति है। यही कारण है कि संत लोग सदा हरिनाम-स्मरण करते रहते हैं।

## भगवच्छरणगति

श्रीमद्भगवद्गीता आदि शास्त्रोंमें भगवच्छरणागतिका बार-बार उपदेश भी इसीलिये दिया गया है कि जिससे व्यक्तिद्वारा जाने-अनजाने किये हुए पापकर्मोंका क्षय होता रहे और व्यक्ति निष्पाप बना रहे, उसे रोग आदि पीड़ित न कर सकें। गीतामें भगवान् कहते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।  
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

(१८१६६)

अर्थात् समस्त कर्तव्य कर्मोंका त्याग करके तुम मुझ  
एक परमात्माकी शरणमें आ जाओ। मैं तुम्हें सम्पूर्ण पापोंसे

मुक्त कर दूँगा, तुम शोक मत करो। भगवन्नाम-स्मरणका भी यही फल है। इसीलिये सभी शास्त्रोंमें विभिन्न देवी-देवताओंके स्तोत्रोंका पाठ करनेका फल पाप-मुक्ति बताया गया है। 'श्रीदुर्गासप्तशती' (१२।२१-२२)-में माँ भगवती दुर्गा स्वयं अपने मुखारविन्दसे कहती हैं कि 'उत्तम सामग्रियोंद्वारा पूजन करनेसे, ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे, होम करनेसे, प्रतिदिन अभिषेक करनेसे, नाना प्रकारके अन्य भोगोंका अर्पण करनेसे तथा दान देने आदिसे एक वर्षतक जो मेरी आराधना की जाती है, उससे मुझे जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी प्रसन्नता मेरे इस उत्तम चरित्रका एक बार श्रवण करनेमात्रसे हो जाती है। श्रवण किया हुआ यह माहात्म्य पापोंका हरण करता है और आरोग्य प्रदान करता है'—

विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम् ।

अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या ॥

प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन् सकृत्सुचरिते श्रुते ।

श्रुतं हरति पापानि तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छति॥

**‘श्रीराम जय राम जय जय राम’**

—इस मन्त्रका जप एवं स्मरण करनेसे मनुष्यको सब प्रकारकी सुख-शान्ति प्राप्त होती है। उसके पापोंका क्षय होता है और उसे रोगनिवृत्तिका सुख प्राप्त होता है। एक बार ज्योतिष्पीठके ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य अनन्तश्री स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराजने लेखकको बताया था कि यह अमोघ मन्त्र है। इसका जप करते रहनेसे व्यक्तिको रोगादि पीड़ित नहीं कर पाते हैं। अतः कल्याणकामीको सदैव इस मन्त्रको जपते रहना चाहिये। ‘श्रीरामरक्षास्तोत्र’-में लिखा है—

रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन् ।

नरो न लिप्यते पापैर्भक्तिं मक्तिं च विन्दति॥

भर्जनं भवबीजानामर्जनं सखसम्पदाम् ।

तर्जनं यमदत्तानां रामरामेति गर्जनम् ॥

वस्तुतः 'रामनाम' में पाप-हरण करनेकी असीम शक्ति है। जिस प्रकार अग्नि स्पर्श होते ही जला देती है, उसी प्रकार रामनाम-स्मरण करते ही पापोंका क्षय होने लगता है और साथ ही पापजन्य रोग भी शान्त होने लगते हैं। महर्षि वाल्मीकि तो अपने जीवनके पूर्वार्धमें सप्तर्षियोंके उपदेश करनेपर भी 'राम' शब्दका उच्चारण नहीं कर पाये

थे और उन्होंने 'राम' शब्दके स्थानपर 'मरा-मरा' जपा, उसीसे वे विशुद्ध-चित्त हो अलौकिक शक्तियोंसे सम्पन्न हो गये, व्याधियोंसे मुक्त हो गये तथा रामायण महाकाव्यके रचयिता हुए। गोस्वामी तुलसीदासजी 'रामचरितमानस' में लिखते हैं—

उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥

### नासै रोग

'हरि' शब्दका सामान्य अर्थ है हरण करनेवाला अर्थात् जो मनुष्योंके पापोंका, दुःखोंका तथा कष्टोंका हरण करता है, वह हरि है। इसी कारण जब-जब भक्तोंपर संकट आये, तब-तब भगवान् हरिने उनका निवारण किया। भगवान् हनुमान् रुद्रावतार हैं। कल्याण करनेके कारण ही

उन्हें शिव-शङ्कर कहा जाता है। उन्होंने हनुमान्के रूपमें अवतार लेकर भगवान् श्रीरामकी लीलाओंमें महत्त्वपूर्ण भूमिकाका निर्वाह किया। 'श्रीहनुमानचालीसा' की यह पंक्ति सदैव जपने एवं स्मरण करने योग्य है—

नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतर हनुमत बीरा॥

अर्थात् जो भक्त वीर हनुमान्के नामका निरन्तर जप करते रहते हैं, उनके रोगोंका तो नाश होता ही है, साथ ही सब पीडा भी दूर हो जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि यदि हम श्रद्धापूर्वक भक्तिके साथ शास्त्रोक्त रीतिसे भगवान्के पावन नामका स्मरण करते हैं तो निश्चय ही पाप दग्ध हो जाते हैं और रोगोंकी निवृत्ति हो जाती है तथा भगवत्कृपाका अनुभव भी हो जाता है।



## रामनाम—सब रोगोंका अचूक इलाज

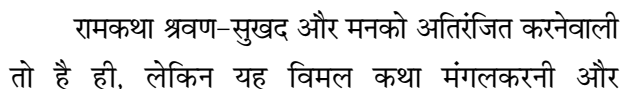
( महात्मा गाँधी )

प्राकृतिक उपचारके इलाजोंमें सबसे समर्थ इलाज रामनाम है, इसमें अचम्भेकी कोई बात नहीं। एक मशहूर वैद्यने अभी उस दिन मुझसे कहा था—'मैंने अपनी सारी ज़िंदगी मेरे पास आनेवाले बीमारोंको तरह-तरहकी दवाकी पुड़िया देनेमें बितायी है, लेकिन जब आपने शरीरके रोगोंको मिटानेके लिये रामनामकी दवा बतायी, तब मुझे याद पड़ा कि चरक और वाग्भट-जैसे हमारे पुराने धन्वन्तरियोंके वचनोंसे भी आपकी बातको पुष्टि मिलती है।' आध्यात्मिक रोगोंको (आधियोंको) मिटानेके लिये रामनामके जपका इलाज बहुत पुराने जमानेसे हमारे यहाँ होता आया है। लेकिन चूँकि बड़ी चीजमें छोटी चीज भी समा जाती है, इसलिये मेरा यह दावा है कि हमारे शरीरकी बीमारियोंको दूर करनेके लिये भी रामनामका जप सब इलाजोंका इलाज है। प्राकृतिक उपचारक अपने बीमारसे यह नहीं कहेगा कि 'तुम मुझे बुलाओ तो मैं तुम्हारी सारी बीमारी दूर कर दूँ।' वह तो बीमारको सिर्फ यह बतायेगा कि प्राणिमात्रमें रहनेवाला और सब बीमारियोंको मिटानेवाला तत्त्व कौन-सा है? किस तरह उस तत्त्वको जाग्रत् किया जा सकता है और कैसे उसको अपने जीवनकी प्रेरक शक्ति बनाकर उसकी मददसे अपनी बीमारियोंको दूर

किया जा सकता है? अगर हिन्दुस्तान इस तत्त्वकी ताकतको समझ जाय, तो आज हमारा जो देश बीमारियों और कमजोर तबीयतवालोंका घर बन बैठा है, वह तन्दुरुस्त और ताकतवर शरीरवाले लोगोंका देश बन जाय।

रामनामकी शक्तिकी अपनी कुछ मर्यादा है और उसके कारगर होनेके लिये कुछ शर्तोंका पूरा होना जरूरी है। रामनाम कोई जंतर-मंतर या जादू-टोना नहीं। जो लोग खा-खाकर खूब मोटे हो गये हैं और जो अपने मोटापेकी और उसके साथ बढ़नेवाली बादीकी आफतसे बच जानेके बाद फिर तरह-तरहके पकवानोंका मजा चखनेके लिये इलाजकी तलाशमें रहते हैं, उनके लिये रामनाम किसी कामका नहीं। रामनामका उपयोग तो अच्छे कामके लिये होता है। बुरे कामके लिये हो सकता होता, तो चोर और डाकू सबसे बड़े भक्त बन जाते। रामनाम उनके लिये है, जो दिलके साफ हैं और जो दिलकी सफाई करके हमेशा साफ-पाक रहना चाहते हैं। भोग-विलासकी शक्ति या सुविधा पानेके लिये रामनाम कभी साधन नहीं बन सकता। बादीका इलाज प्रार्थना नहीं, उपवास है। उपवासका काम पूरा होनेपर ही प्रार्थनाका काम शुरू होता है, गोकि यह सच है कि प्रार्थनासे उपवासका काम आसान और हलका

[प्रेषक—श्रीशिवकुमार गोयल]



कलमलहरनी भी है—

मंगल करनि कलि मल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की॥

(१।१० (छं०))

ऐसे तो मानसिक रोगोंकी लम्बी सूची गोस्वामीजीने प्रस्तुत की है लेकिन उनकी दृष्टिमें तीन रोग अति प्रबल है—

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।

मुनि बिग्यान धाम मन करहि निमिष महुँ छोभ॥

(३।३८ (क))

तीनों रोगोंकी व्याख्या करते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं—  
काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥  
प्रीति करहि जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई॥

(७।१२१।३०-३१)

यों तो मानसिक रोगोंकी संख्या अपार है लेकिन उनमें तीन ही प्रधान हैं। भगवान्ने गीतामें इनको रजोगुणसे उत्पन्न होनेवाला कहा है—

‘काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।’

(गीता ३।३७)

गोस्वामीजीने कामको वातरोग, लोभको कफजनित रोग तथा क्रोधको पित्तजनित रोग कहा है। शरीरकी संरचनामें वात, कफ और पित्तका महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये सम अवस्थामें रहते हैं तो शरीर स्वस्थ रहता है, लेकिन इनके विषम होते ही शरीर रोगोंका डेरा बन जाता है।

मानसिक रोगोंकी भी यही दशा है। काम, क्रोध और लोभ यदि मर्यादामें रहें तो जीवात्माको कोई खतरा नहीं। लेकिन जब तीनों कुपित होकर विषम हो जाते हैं तो सन्निपातका होना अनिवार्य है—

प्रीति करहि जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई॥

एक ही रोग मृत्युके लिये पर्याप्त है, फिर ये अनन्त व्याधियाँ भला जीवको कहाँ शान्तिसे रहने देंगी? मानस-रोगोंसे ग्रस्त पुरुष भला समाधिको कैसे प्राप्त करेगा—

एक व्याधि बस नर मरहि ए असाधि बहु व्याधि।

पीड़हि संतत जीव कहूँ सो किमि लहै समाधि॥

(७।१२१ (क))

समाधिकी बात तो बहुत दूर है, मानसिक रोगी कभी

सामान्य सुख-शान्तिका अनुभव भी नहीं कर सकता है। वह त्रितापोंकी ज्वालामें निरन्तर जलता ही रहता है।

मानसिक रोगीकी एक विलक्षण विशेषता यह है कि वह स्वयंको रोगी नहीं मानकर सामनेवालोंको रोगी मानता है। अतः जबतक रोगीको अपने रोगका ज्ञान नहीं होगा तबतक वह उसका उपचार भी नहीं करायेगा।

रोगका ज्ञान होनेपर वह निदानके लिये तत्पर होता है लेकिन ये रोग इतने प्रबल हैं कि क्षीण तो हो जाते हैं लेकिन समूल नष्ट नहीं होते—

जाने ते छीजहिं कछु पापी । नास न पावहिं जन परितापी॥

(७।१२२।३)

बल्कि कुपथ्यका जल पाकर पुनः अंकुरित हो जाते हैं—

बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे । मुनिहु हृदयँ का नर बापुरे॥

(७।१२२।४)

मानसिक रोगोंसे सारा संसार ही ग्रस्त है। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि सभीके हृदयमें कुण्डली मारे बैठे हैं। इनका विस्फोट कब हो जायगा इसका अनुमान लगाना भी मुश्किल है। जब बड़े-बड़े मुनियोंके मनको ये मथित कर देते हैं तो फिर बेचारे सामान्य मानवकी क्या बात है?

वेदशास्त्रोंमें मानसिक रोगोंसे मुक्त होनेके अनेक उपाय बतलाये गये हैं, अनेक औषधियोंका वर्णन है लेकिन ये जटिल रोग जाते नहीं—

नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान।

भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान॥

(७।१२१ (ख))

मानस-रोगोंसे मुक्तिके दो सुगम उपाय हैं—

(१) भगवान्की कृपा तथा

(२) सद्गुरुद्वारा बतलाये गये उपायोंका दृढ़तापूर्वक पालन करना।

राम कृपाँ नासहिं सब रोगा। जौं एहि भाँति बनै संयोगा॥  
सदगुर बैद बचन बिस्वासा । संजम यह न बिषय कै आसा॥  
रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥  
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं । नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं॥

(७।१२२।५-८)



१. अविचार्य यत्किञ्चित् प्रतिपद्यमाना निःश्रेयसात् प्रतिहन्येतानर्थं चेयात् । (शारीरकभाष्य १।२।२)
२. तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हो जानेसे जाग्रत-कालमें जो राग और वासनासे रहित सुषुप्ति-अवस्था प्राप्त होती है, उसे तत्त्वज्ञ पुरुष 'स्वभाव' कहते हैं तथा उसमें परिनिष्ठित हो जाना 'मुक्ति' कहलाती है। ऐसी निष्ठा प्राप्त हो जानेपर तत्त्वज्ञानी (ब्रह्मज्ञानी)-को कर्ता, कर्म और करणसे हीन द्रष्टा, दृश्य और दर्शनसे शून्य तथा बाह्य और आभ्यन्तर-विषयोंसे रहित ब्रह्म जगत्-रूपसे स्थित जान पड़ता है अर्थात् जगत् ब्रह्म-स्वरूप ही प्रतीत होता है। इस कारण उसके समस्त भवरोग नष्ट हो जाते हैं।
३. योगवाशिष्ठ नि० उ० २१।१०
४. वासनाक्षयविज्ञानमनोनाशा महामते । समकालं चिराभ्यस्ता भवन्ति फलदा मुने ॥ (योगवा० उ० १२।१७)
५. योगवा० उ० १२।३५-३६
६. योगवा० नि० प्र० उ० १५।२६ (क्योंकि वह भोगरूपी गंदी चीजको पसंद करता है, मनुष्य तो वही है जो मोक्षके लिये प्रयत्नशील है।

भगवान् शंकराचार्यजी महाराज मनको ही सारे अनर्थोंका जड़ मानते हुए कहते हैं—‘जगत्को किसने जीता ? जिसने मनको जीता।’<sup>१०</sup> तभी तो कहा गया है कि हाथोंसे हाथोंको मसलकर और दाँतोंसे दाँतोंको पीसकर अङ्गोंके पराक्रमद्वारा मनको जीतना चाहिये। मनको जीतकर ही संसारपर विजय प्राप्त की जा सकती है।<sup>११</sup> क्योंकि मन ही बन्धन और मोक्षका हेतु है।<sup>१२</sup> अतः मनसे ही मनका पाशरूप बन्धन काटकर संसारसे आत्माको तारा जा सकता है और किसीके द्वारा वह तारा नहीं जा सकता।<sup>१३</sup>

१. ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः । (श्वेता० १।११)
२. ब्रह्मोदुपेन प्रतेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि । (श्वेता० २।८)
३. 'तरति शोकमात्मवित्' (छान्दोग्य ७।२।३)
४. 'तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः' (अथर्ववेद १०।८।४४, ऋक्० १।१६७।२२)  
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय । (यजुर्वेद ३१।१८)
५. 'अद्वैततत्त्वबोधाय सृष्टिः सर्वत्र कथ्यते' (अनुभूतिप्रकाश ९।४५) छान्दोग्योपनिषद् (६।८।४)
६. 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति' (छान्दोग्य० ६।२।३) 'लोकवतु लीलाकैवल्यम्' (ब्रह्मसूत्र २।१।३३)
७. 'संकल्पमात्रकलनेन जगत्समग्रम्' (वराहोप० २।४५)
८. असंकल्पाज्जयेत् कामं क्रोधं कामविवर्जनात् । अर्थानर्थैक्षया लोभं भयं तत्त्वावमर्शनात् ॥ (श्रीमद्भा० ७।१५।२२)
९. संकल्पसंक्षयवशाद्गलिते तु चित्ते, संसारमोहमहिक्का गलिता भवन्ति । (योगवा०उत्पत्ति०महो० ५।५३)
१०. 'जितं जगत् केन मनो हि येन' । (प्रश्नोत्तरी ११)
११. हस्तं हस्तेन सम्पीड्य दन्तैर्दन्तान् विचूर्ण्य च । अङ्गान्यङ्गैःसमाक्रम्य जयेदादौ स्वकं मनः ॥ (मुक्तिकोप० २।४२)
१२. मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः । बन्धनं विषयासक्तं मुक्त्यै विनिर्विषयं मनः ॥ (त्रिपुरातापिन्यु० ५।३)
१३. मनसैव मनश्छित्त्वा पाशं परमबन्धनम् । भवादत्तारयात्मानं नासावन्येन तार्यते ॥ (महोप० ४।१०७)

‘दृश्य-प्रपञ्च है ही नहीं’—इस भावनासे चित्त जब सर्वथा क्षीण हो जाता है, तब उस समान-स्वरूप चैतन्यकी सबमें समान-भावसे व्यापक स्वतःसिद्ध सत्ता ही सत्ता- सामान्य-अवस्था होती है। ब्रह्ममें मन स्वाभाविक ही रहता है, पर जैसे तरङ्गमें तरङ्ग-बुद्धि करनेसे वह तरङ्ग-भावमें प्रतीत होती है और तरङ्गमें जल-बुद्धि करनेसे उसमें सामान्य जल-बुद्धि होती है; ऐसा पुरुष जल और तरङ्गके भेदसे विमुक्त निर्विकल्प कहा जाता है; वैसे ही मनकी मन-भावना करनेसे वह मन-रूपमें परिणत हो संसारके निर्माण और दुःखका कारण होता है, पर मनकी ब्रह्म-भावना करनेसे वह सर्वत्र ब्रह्म-दर्शनकी क्षमता प्रदान करता है और ऐसा पुरुष निर्विकल्प हो जाता है।

सब भूतोंमें एक ही आत्मा है। वह ज्ञानीको एक रूपमें तथा अज्ञानीको जलमें प्रतिबिम्बित चन्द्रमाकी भाँति अनेक रूपोंमें दिखायी देता है। इस प्रकार एक ही आत्मा अस्ति-भाति-प्रियरूप सच्चिदानन्दके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वही पिण्डोपाधिसे रहित होनेसे आत्मा तथा ब्रह्माण्डोपाधिसे

रहित होनेसे ‘ब्रह्म’ शब्दसे व्यवहृत है। जिस प्रकार घटाकाश और महाकाशमें घटकी उपाधि ही रुकावट है और उपाधिके नष्ट होनेपर घटाकाश तथा महाकाशकी एकता हो जाती है, उसी प्रकार सर्वात्मभावकी जागृति होनेपर सब कुछ ब्रह्म ही हो जाता है। इससे साधकको सदा, सर्वत्र, सब नाम-रूपोंमें भगवद्दर्शन या आत्मदर्शन होने लगते हैं।

सम्प्रति, तरल होनेके कारण जिस प्रकार जल ही अपनेमें आवर्त-रूपसे प्रतीत होता है, उसी प्रकार चित्तरूप होनेके कारण आत्मा ही जगत्-सा प्रतीत होता है। जगत् इससे भिन्न कुछ भी नहीं है। समस्त एषणाओंकी शान्ति हो जानेपर विशुद्ध चित्-पुरुषकी जो स्थिति है, उसीको सत्य आत्म-तत्त्व कहा गया है और उसीको निर्मल चैतन्य कहते हैं। विशुद्ध तत्त्वज्ञान प्राप्त हो जानेपर इस सम्पूर्ण विश्वका अपने-आपमें और अपने-आपका सारे विश्वमें अनुभव करना सुलभ हो जाता है तथा भव-रोगोंसे सुगमतापूर्वक छुटकारा प्राप्त हो जाता है।



## रोग-निवारणके अनुभूत सिद्ध प्रयोग एवं सत्य घटनाएँ

### अनुभूत प्रयोग

#### ( १ ) जुकाम

जुकामसे बार-बार आक्रान्त होनेकी व्याधि असंख्यो नर-नारियोंमें पायी जाती है। इसका कारण है आहार-विहारका प्रदूषण, भोजनमें अम्ल और मधुर रसोंका अतिसेवन। खट्टे, नमकीन, चटपटे, गुड़, बूरा, अन्यान्य मिठाइयाँ एवं फास्ट फूड्सके अतिसेवनसे रस धातु दूषित हो जाती है अथवा इसकी अतिशय वृद्धि हो जाती है। उपद्रवस्वरूप स्लोफीलिया, रेस्पिरेटरी, एलर्जी एवं ब्रांकियल अस्थमा-यक्ष्मा में परिणत होती है। पाश्चात्य चिकित्सा-पद्धति एलोपैथीमें इससे स्थायी रूपसे छुटकारा पानेके लिये अबतक कोई चिकित्सा नहीं है। यहाँ एक आयुर्वेदिक सिद्ध-योग दिया जा रहा है, जिससे रोगियोंको लाभ मिलेगा—

रसमाणिक्य २० ग्राम, महालक्ष्मीविलास ५ ग्राम, अभ्रकभस्म सहस्रपुटित २ ग्राम, लघु बसन्तमालती ५ ग्राम, बृहत् शृंगाराभ्रस १० ग्राम, प्रवालपिष्टि १० ग्राम, तालीसादि चूर्ण ५० ग्राम, पुष्करमूल चूर्ण ५० ग्राम।

इन समस्त औषधियोंको एक घंटा खरलकर चालीस पुड़िया बना लें। १-१ पुड़िया सुबह-शाम मधुसे लें। दशमूलारिष्ट और द्राक्षारिष्ट २-२ चम्मच दूना जल मिलाकर

खानेके बाद लें। अगस्त्य हरीतकी १ चम्मच रातको १ गिलास उष्ण जलसे लेनेके बाद आधा किलो० गोदुग्ध पीवें। दुग्धमें २ बड़ी पीपर उबालकर पीवें। पित्त प्रकृति हो तथा उष्णता अधिक प्रतीत हो तो एक छोटी पीपर उबालकर पीवें। आवश्यकतानुसार २ से ४ मासतक इनके सेवनसे जीवनभरके लिये जुकामसे निवृत्ति हो जाती है।

#### ( २ ) रक्तचापकी वृद्धि

यदि आप उच्च रक्तचापके जीर्ण रोगी हैं एवं नियमित रूपसे एलोपैथी दवाएँ लेनी पड़ती हैं तो साथमें निम्न प्रयोग भी करें। स्थायी रूपमें उच्च रक्तचापसे मुक्ति पा लेंगे—

जटामांसी ३०० ग्राम लेकर उसमें ३० हिस्से करें। रातको १० ग्राम जटामांसी १०० ग्राम पानीमें भिगो दें। प्रातः मसलकर छान लें और २ चम्मच मधु मिलाकर पीवें। पथ्यापथ्यका ध्यान रखते हुए साठ दिनके सेवनद्वारा रोगसे पूर्ण छुटकारा मिल जायगा।

#### ( ३ ) पेटके रोगोंके लिये दो योग

( क ) वर्तमान युगमें पेटके रोगोंकी बहुतायत है। इनमें जीर्ण-प्रवाहिका (क्रानिक एमीविक डिसेन्ट्री)-के रोगियोंकी संख्या तो विश्वमें करोड़ोंमें है। इस व्याधिके

निवारणार्थ एक सिद्ध प्रयोग दिया जा रहा है—

सत ईसबगोल ३ ग्राम, जीरा सफेद १ ग्राम, इलायची खुर्द आधा ग्राम, इन्द्र जौ कड़वी २ रत्ती, कुड़ासक १ ग्राम सुबह-शाम पानीसे लें। पेटमें वायु अधिक हो तो ४-४ रत्ती मस्तंगी मिला दें।

(ख) पेटकी गैस—कलईका बढ़िया सूखा चूना लेकर ग्वारपाठेके रसमें घोंटकर २-२ रत्तीकी गोली बनाकर छायामें सुखा लें। २-२ गोली दिनमें २ या ३ बार लें। साधारण दिखनेवाला यह प्रयोग गुणमें अद्वितीय है।

#### (४) शय्या-मूत्र

अनेक लोगोंको और प्रायः बच्चोंको शय्या-मूत्रकी आदत पड़ जाती है। रातको उड़दकी खड़ी दाल एक मुट्ठी

पानीमें भिगोकर रख दें। सुबह पानी निकालकर थोड़ी शक्कर डाल दें। इसे चबा-चबाकर खायें। इससे एक महीनेमें रोगसे छुटकारा मिल जायगा।

#### (५) पेशाब रुकनेपर

गर्मीके तीव्र आघातसे मूत्रावरोध हो जाता है। इसके लिये—शीशमकी पत्ती ५० ग्राम, सांभर नमक १० ग्राम दोनोंको पीसकर पेड़पर लेप करनेसे १०-२० मिनटमें पेशाब हो जायगा।

[वैद्य श्रीशिवकुमारजी शर्मा आचार्य

पी-एच०डी०, नाडी एवं जटिल रोग विशेषज्ञ

श्रीपीताम्बरा बगलामुखी शक्ति अनुष्ठान पीठ एवं आयुर्वेद सिद्ध चिकित्सा आश्रम, एत्मादपुर—२८३२०२ (आगरा)]



### घटनाएँ

#### (१)

#### गोमाताकी कृपासे मैं असाध्य रोगोंसे मुक्त हुआ

( श्रीसोहनलालजी बगड़िया )

कई वर्ष पुरानी बात है। ग्रह-दशा या किसी पूर्वजन्मके संस्कारके कारण मैं शारीरिक तथा मानसिक दृष्टिसे बीमारियोंके चंगुलमें फँसता चला गया, जिसके कारण अहर्निश अशान्त एवं अव्यवस्थित-चित्त रहा करता और साथ ही मेरी चिन्ता भी बढ़ती जा रही थी। चौबीसों घंटेकी इस चिन्ताने मेरे शरीरको जर्जर करके रख दिया था। भोजनके बाद सोनेका प्रयास करता, किंतु स्वप्नोंसे घिर जाता।

पूरा शरीर रोगोंका घर बन गया था। प्रायः घुटनोंमें दर्द रहने लगा। रात-दिन सिरमें पीडा रहती। पाचनशक्ति नष्टप्राय हो चुकी थी। स्मरणशक्ति भी लुप्त हो रही थी। मानसिक संतुलन बिगड़ जानेसे हर समय क्रोधका आवेश रहता, जिससे मैं अधिकाधिक चिड़चिड़ा हुआ जा रहा था। चिन्ता और चिड़चिड़ेपनसे शरीरका रंग बिलकुल काला पड़ गया था। शरीरमें खुजली होने लगी थी और पूरा शरीर अस्थिमात्रका ढाँचा बन गया था।

मैंने शरीरके अनेक अवयवोंकी डॉक्टरों जाँच करायी, किंतु कोई भी बीमारी पकड़में नहीं आयी। आयुर्वेदिक, एलोपैथिक तथा होम्योपैथिक तीनों प्रकारकी दवाएँ लीं, किंतु रोगका निवारण सम्भव नहीं हो सका। गणेशपुरी (महाराष्ट्र) जाकर गन्धकके पानीसे कई दिनोंतक स्नान किया, लेकिन चर्मरोगपर भी नियन्त्रण नहीं पाया जा सका।

जीवनसे निराश होकर मैंने 'हारेको हरिनाम' का सहारा लिया और तीर्थयात्राके लिये निकल पड़ा। द्वारका एवं

रामेश्वरकी तीर्थयात्राके बाद बदरीनाथ, केदारनाथ, गङ्गोत्री आदिकी यात्रा करता हुआ ऋषिकेश पहुँचा। वहाँ एक ऐसे सज्जनसे भेंट हुई, जिन्होंने आश्वासनपूर्वक बड़ी ही दृढ़ताके साथ कहा—'आप गोमूत्रका प्रयोग करें, समस्त व्याधियोंसे पूरी तरह मुक्त हो जायँगे।' उन्होंने मुझे बताया कि एक कप चायके बराबर गोमूत्रका सेवन किया जाय। उसे कपड़ेकी आठ तह करके छान लेना चाहिये और धीरे-धीरे अभ्याससे इसे बढ़ाकर पाव-डेढ़ पावतक लिया जा सकता है। कुछ गोमूत्रको धूपमें रखकर अगले दिन उसे शरीरपर मालिश करनेसे विविध रोगोंसे छुटकारा मिल सकता है।

मैंने पहले दिन एक कप गोमूत्र-पान किया तो मुझे उलटी हो गयी। मैंने दृढ़ संकल्प लेकर दूसरे दिन फिर पान किया तो वह पेटमें जाकर पच गया। सूर्यकी किरणोंके सामने रखे गोमूत्रसे पूरे शरीरमें मालिश भी प्रारम्भ कर दी। इस मालिशसे शरीरकी कड़ी चमड़ी नरम होने लगी।

गोमूत्रने कुछ ही दिनोंमें अपना चमत्कार दिखाना शुरू कर दिया। शरीरसे कफ निकलना शुरू हो गया। खाँसते-खाँसते मेरा बुरा हाल हो जाता था। गोमूत्रके सेवनसे खाँसी भी कम होती गयी। मैंने पारिवारिक चिकित्सकसे जाँच करायी तो उन्होंने बताया कि आपके स्वास्थ्यमें काफी बदलाव है तथा रोगोंपर तेजीसे नियन्त्रण हो रहा है। किंतु उन्होंने कुछ दिन गोमूत्र-सेवन रोक देनेका सुझाव दिया। मैं दुविधामें पड़ गया कि क्या करूँ? ऐसी स्थितिमें मैंने 'आखिर अन्तिम राम-सहारा' इस संतवाणीका सहारा लिया। मुझे उसी समय एक संतद्वारा गोमाताके दुग्ध तथा

गोमूत्रके महत्त्वपर दिये प्रवचनकी कुछ पंक्तियोंने निरन्तर गोमूत्र-सेवन करते रहनेको प्रेरित किया। उसी प्रेरणाके वशीभूत होकर मैं प्रतिदिन गोमूत्र, गोदुग्ध तथा गायके दही-मट्ठा आदिका प्रयोग करने लगा। एक वर्षके इस निरन्तर प्रयोगसे मेरा शरीर समस्त रोगोंसे पूरी तरह मुक्त तो हो ही गया—मानसिक तनाव, क्रोध तथा अन्य मानसिक व्याधियोंसे भी गोमाताने मुझे मुक्ति दिला दी।

मैंने यह भी अनुभव किया कि देशी भारतीय गायका मूत्र विशेष गुणकारी होता है। बच्चोंकी घुट्टीमें यदि गोमूत्रकी कुछ बूँदें मिलाकर पिलायें तो बच्चा अनेक रोगों—विशेषकर पेटके विकारसे मुक्ति पा लेता है। लगातार गोमूत्रका सेवन करनेसे रक्तका दबाव स्वाभाविक हो जाता है। गोमूत्र पेटके समस्त विकारों, लीवरकी खराबीको दूर करके शरीरमें स्फूर्ति पैदा करता है।

गोमूत्र सबेरे खाली पेट सेवन करें तथा उसके बाद एक घंटेतक कुछ न लें। [प्रेषक—श्रीधर्मेन्द्रजी गोयल]

( २ )

### मन्त्र-जापसे रोग-मुक्ति

इस घोर जडवादी युगमें अनेक शिक्षित व्यक्ति मन्त्र, उपासना एवं ईश्वर-भक्तिके चमत्कारोंपर विश्वास नहीं करते। इन्हें केवल पाखण्ड और अन्धविश्वासमात्र समझते हैं; पर विश्वमें कई बार ऐसी घटनाएँ घटती हैं, जिनके रहस्यको खोजना विज्ञानके सामर्थ्यके भी बाहर होता है।

घटना पुरानी है। उन दिनों मैं अमरसर (जिला जयपुर, राजस्थान) में विज्ञानके प्राध्यापक-पदपर कार्य कर रहा था। मेरे पड़ोसमें एक सज्जन रहते थे। आयु होगी साठ वर्षके लगभग। पेंशन पाते थे। इससे पूर्व राजकीय सेवामें थे। प्रकृतिसे सरल, सात्त्विक एवं आस्तिक।

एक दिन अकस्मात् वातव्याधि (Rheumatism) ने उनपर आक्रमण किया। आक्रमण भयानक था। उनकी दक्षिण भुजा आक्रान्त हो गयी। उन्होंने समझा एक-दो दिनमें दर्द कम हो जायगा, पर रोग बढ़ता ही गया। डॉक्टरों-वैद्योंका इलाज भी चला, पर विशेष लाभ न हुआ। कई तरहकी होम्योपैथिक तथा आयुर्वेदिक दवाइयाँ दी गयीं, पर लाभ किंचिन्मात्र ही हो पाया। दिनमें कुछ आराम मिलता था, पर रात्रिमें फिर दर्द बढ़ने लगता। रोग धीरे-धीरे सारे शरीरमें फैल गया।

एक दिन सायंकालको मैं उनके पास ही बैठा था। उन्हें सान्त्वना दे रहा था।

वे कहने लगे—‘रोग तो बढ़ता ही जा रहा है। मैं जीवित भी रह सकूँगा या नहीं; कह नहीं सकता। ईश्वरने न जाने, मुझे पूर्वजन्मके किन पापोंका दण्ड दिया है!’

मैंने आश्वासन देते हुए कहा—‘घबराइये नहीं। ईश्वर सब ठीक करेगा। ईश्वर दीनबन्धु है, करुणानिधान है। विश्वास रखिये, ईश्वरकी कृपासे आप कुछ दिनोंमें पूर्णरूपसे स्वस्थ हो जायँगे। डॉक्टर-वैद्योंका इलाज तो आप करा चुके, अब डॉक्टरोंके भी डॉक्टरका इलाज कराइये।’

उन्होंने पूछा—‘वह कौन है?’

मैंने कहा—‘वह है परमपिता परमेश्वर। कल मैं आपको ‘कल्याण’ का ‘मानसाङ्क’ दूँगा। उसका आप स्वाध्याय कीजिये और एक मन्त्रका स्वयं जप करिये और कराइये। मन्त्र यह है—’

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि व्यापा॥

(रा०च०मा० ७। २१। १)

दूसरे दिन मैं उन्हें ‘मानसाङ्क’ दे आया। वे उसका नित्य स्वाध्याय करने लगे और उपर्युक्त मन्त्रका जाप भी। ईश्वरका चमत्कार देखिये—‘उन्हें आरोग्य-लाभ होने लगा, हाथ-पैरोंका दर्द कम होने लगा और पंद्रह दिनोंमें ही वे उठने-बैठने तथा चलने-फिरने योग्य हो गये।

कितना भयंकर और दुःसाध्य रोग मानसके स्वाध्याय एवं मन्त्र-जापसे दूर हो गया। ईश्वरकी लीला अपरम्पार है।

आज वे पूर्णरूपसे स्वस्थ हैं। अब नियमित रूपसे रामायणका पाठ करते हैं। अपने आरोग्य-लाभकी मूल ओषधि वे इसी मन्त्रको मानते हैं। इसके अतिरिक्त एक दोहेके जापसे भी उन्हें काफी लाभ हुआ है। वह है—

मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।

अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर॥

विपत्तिके समय इस मन्त्रके जापसे काफी लाभ होता है। दृढ़ विश्वास, श्रद्धा, सच्ची प्रीति तथा आस्तिक भावना धारण करनेसे ईश्वर अवश्य ही भक्तोंके कष्टोंका निवारण करते हैं।

यह छोटी-सी पर महत्त्वपूर्ण घटना नास्तिकों तथा भौतिकवादियोंको भी आस्तिकताकी ओर प्रेरित करती है। धन्य ईश्वरकी महिमा!

(—प्रो० श्याममनोहर व्यास, एम्०एस्-सी०)



## नम्र निवेदन और क्षमा-प्रार्थना

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।

नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥

‘अच्युत, अनन्त, गोविन्द आदि भगवन्नाम-स्मरणरूपी औषधिसे सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं, यह बात मैं सत्य कहता हूँ, सत्य कहता हूँ।’ ‘चरकसंहिता’ की टीकामें आचार्य चक्रपाणिदत्तने अधिकारपूर्वक यह उद्घोष किया है।

यदि गम्भीरतासे विचार किया जाय तो शरीरमें जितनी व्याधियाँ हैं, वे सब स्वयंके पापोंके कारण ही उत्पन्न होती हैं। ‘जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते’। अपने शास्त्र कहते हैं कि भगवन्नाम-स्मरणसे सर्वविध पापोंका शमन होता है। अतः उपर्युक्त कथनमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

वास्तवमें मनुष्यलोकमें जन्म लेकर चतुर्विध पुरुषार्थको प्राप्त करना ही मानव-जीवनकी उपलब्धि है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंके मिल जानेपर कुछ शेष नहीं बचता, जिसे प्राप्त करनेका प्रयत्न किया जाय। संसारमें जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होना ही मोक्ष है, जो मनुष्यका अन्तिम लक्ष्य है। सामान्यतः मानव सुख-शान्ति और समृद्धिकी भी इच्छा करता है, पर यह सब स्वस्थ जीवनमें ही सम्भव है, इसीलिये कहा गया है—

‘धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमूत्तमम्’ ।

जबतक शारीरिक स्वास्थ्य बना हुआ है, तबतक व्यक्ति धर्म (कर्तव्य) का आचरण करनेमें समर्थ है। जब शरीर अस्वस्थ हो जायगा तो दूसरोंके द्वारा प्रेरित करनेपर भी कोई कर्म करनेका उत्साह नहीं रहेगा—

यावत्स्वास्थ्यं शरीरस्य तावद्धर्मं समाचरेत् ।

अस्वस्थश्चोदितोऽप्यन्यैर्न किञ्चित् कर्तुमुत्सहेत् ॥

(शिवपुराण)

अतः शरीरको स्वस्थ रखना मनुष्यका धर्म है।

भगवत्कृपासे इस वर्ष 'कल्याण' का विशेषाङ्क 'आरोग्याङ्क' पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत किया जा रहा है।

आजकल मनुष्यके जीवनमें इतनी जटिलताएँ आ गयी हैं कि वह निरन्तर आधि-व्याधिसे ग्रस्त रहता है। आधुनिक औषधियाँ भी नये-नये रोगोंका सृजन करनेमें संलग्न हैं। वर्तमान समयमें जीवन-यापनकी गतिमें जितनी तीव्रता आयी है, उतनी ही तीव्रता लोगोंके द्वारा अपने दैनिक जीवनमें औषधि-प्रयोगकी भी हुई है। अन्न, जल

और वायुकी तरह औषधि-सेवन भी जीवनकी अनिवार्यता बनती जा रही है। सामान्यतः कितने ही लोग तो आज ऐसी स्थितिमें पहुँच गये हैं कि औषधिके बिना जी ही नहीं सकते हैं। यह विवशता या बुराई उसी पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यताकी देन है, जिसने अन्य बुराइयोंको भारतीय जनजीवनमें प्रविष्ट करा दिया। पाश्चात्य देशोंमें तथाकथित सुसंस्कृत और सभ्य समाजकी स्थिति यह है कि बिना औषधिके न तो उन लोगोंका खाना हजम होता है और न नींदकी गोली लिये बिना उन्हें सुखकी नींद आती है। अपना पेट साफ करने या निर्बाध शौचके लिये भी नियमित रूपसे 'टेबलेट' लेना उनकी विवशता है। रक्तचाप, मधुमेह तथा अन्य कई प्रकारकी शारीरिक बीमारियोंसे बचनेके लिये उन्हें नियमित रूपसे विभिन्न प्रकारकी गोलियों तथा औषधियोंका आश्रय लेना पड़ता है। आज यह सब पाश्चात्य सभ्यताकी नियति बन गयी है और इसी नियतिने भारतीय जनजीवनमें भी प्रवेशकर लोगोंको तथाकथित सुसंस्कृत और सभ्य बनाना प्रारम्भ कर दिया है। इसीका यह परिणाम है कि भारतीय जनजीवनमें भी कृत्रिमताका प्रवेश होता जा रहा है और प्रकृतिसे उसका नाता टटता जा रहा है।

पूर्वके दिनोंमें भारतीय जनजीवन, उसका रहन-सहन, आहार-विहार आदिकी ओर यदि दृष्टिपात किया जाय तो ऐसा लगता है कि उन दिनों हम प्रकृतिके अधिक निकट थे, प्रकृतिकी सुरम्य गोदमें हमारा जीवन-यापन होता था। प्राकृतिक परिवेशसे सम्बन्धित हमारा आहार-विहार था और वही हमारी स्वास्थ्य-रक्षाका सुदृढ़ आधार था। बिना औषधि-सेवनके व्यक्ति स्वस्थ और सुखी जीवन व्यतीत करते थे। औषधिका प्रयोग केवल बीमार होनेकी स्थितिमें आवश्यक होता था, परंतु धीरे-धीरे स्थितिमें बदलाव आया और अब तो स्थिति पूरी बदल गयी है।

वास्तवमें मनुष्य स्वस्थ रहते हुए कष्टरहित जीवन व्यतीत करना चाहता है। अस्वस्थ या रोगी होना कोई नहीं चाहता। स्वस्थ रहनेके लिये वह यथासम्भव प्रयत्न भी करता है, परंतु इसके बावजूद भी कितने लोग रोगमुक्त नहीं हो पाते तथा कष्टसे मुक्ति भी नहीं मिलती। बीमारी मनुष्यके दुःख या कष्टका ऐसा कारण है, जो उसके शरीर, मन और मस्तिष्कको प्रत्यक्ष रूपसे प्रभावित करती है। शरीर, मन या

मस्तिष्कका स्वस्थ होना, विकारग्रस्त होना अथवा रोगी होना प्रकृतिके विपरीत अप्राकृत अवस्थाका द्योतक है। मनुष्यके शरीरमें बीमारी या रोग उत्पन्न होना शरीरकी प्रकृतिके असंतुलनका परिणाम है अर्थात् शरीरमें रोग तब उत्पन्न होता है, जब शरीर या मनकी प्रकृतिका संतुलन बिगड़ जाता है।

आयुर्वेद जो 'जीवन-विज्ञानशास्त्र और चिकित्साशास्त्र है' के अनुसार मनुष्यके स्वस्थ रहनेकी परिभाषा अत्यन्त व्यापक है। मनुष्यके स्वस्थ रहनेके लिये केवल शरीरका रोगमुक्त होना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु शरीरमें ऐसी स्थिति होना भी आवश्यक है कि उसका मन और मस्तिष्क भी किसी विकारसे पीडित या प्रभावित न हो। जिसके वात, पित्त, कफ—ये तीन दोष सम हों, जिसकी जठराग्नि (पाचन-क्रिया) सम हो, जिसकी धातुओं—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र—की क्रिया सम हो, जिसकी आत्मा, दसों इन्द्रियाँ तथा मन प्रसन्न (निर्मल-अविकारी) हो, वह स्वस्थ कहलाता है—

**समदोषः समाग्रिश्च समधातुमलक्रियः।**

**प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥**

(सुश्रुत)

यहाँपर स्वस्थ पुरुषकी जो परिभाषा बतलायी गयी है, वह अपने-आपमें पूर्ण सार्थक और सर्वथा व्यावहारिक है। आयुर्वेदके अनुसार शरीरकी सभी प्रकारकी स्थितिमें दोष, धातु और मल ही मूल कारण हैं। जब ये तीनों सम अवस्थामें होते हैं तो शरीरका संतुलन बना रहता है और शरीरमें कोई रोग या विकार उत्पन्न नहीं हो पाता।

इस प्रकार आयुर्वेदके अनुसार स्वस्थ व्यक्तिके लिये दोषोंकी साम्यावस्था अत्यन्त आवश्यक है।

परंतु वास्तविकता यह है कि वर्तमान समयमें मनुष्यके जीवनमें जटिलताएँ इतनी अधिक हो गयी हैं, वह भौतिक सुख-सुविधाओंको जुटानेकी चाहमें इतना व्यस्त है कि अपने स्वास्थ्यकी सुरक्षाके लिये उसके पास समय नहीं है। परिणामस्वरूप मानसिक तनाव तथा विभिन्न शारीरिक रोगोंसे ग्रस्त होनेके कारण उसका उद्विग्न होना भी स्वाभाविक है।

अपने शास्त्रोंमें ऐसी प्रक्रिया उपलब्ध है, जिसे अपनाकर व्यक्ति नीरोग और पूर्ण स्वस्थ रह सकता है। शरीर और मनसे स्वस्थ रहना साधनाका प्रथम सोपान है। भवरोगसे निवृत्त होनेकी दवा भी हमारे ऋषि-महर्षि-

महात्माओंने बतायी है, जिसके अनुसार मनुष्य स्वयंका कल्याण कर सकता है।

इन सब दृष्टियोंको ध्यानमें रखकर यह 'आरोग्याङ्क' आपकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ऋषि-महर्षियोंद्वारा प्रतिपादित विभिन्न भारतीय चिकित्सा-पद्धतियोंका निरूपण, आयुतत्त्व-मीमांसा, आहार-विहार, रहन-सहन, स्वाभाविक और संयमित जीवनका स्वरूप, शास्त्रोंद्वारा प्रतिपादित यम-नियम, आचार-विचार एवं यौगिक क्रियाओंका अनुपालन, प्राचीन विधाओंसे लेकर अर्वाचीन चिकित्सा-पद्धतियों तथा उनके हानि-लाभका विवेचन, नीरोग रहनेके घरेलू नुसखे तथा अनुभूत प्रयोग, विभिन्न भारतीय चिकित्सा-पद्धतियोंके महानुभावोंका चरित्रावलोकन तथा भगवान् धन्वन्तरिद्वारा प्रवर्तित आयुर्वेदशास्त्र, इसके साथ ही प्रकृतिके कुछ सरल एवं स्वाभाविक नियमों तथा स्वस्थ जीवनके मूलभूत सिद्धान्तोंको सरल और सुगम रूपमें प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है, जिससे सर्वसाधारण चिकित्साके क्षेत्रमें नवजागृति और सत्प्रेरणा प्राप्त करते हुए विभिन्न व्याधियोंसे मुक्त होकर स्वस्थ जीवनके वास्तविक स्वरूपसे परिचित हो सके तथा अपने परम उद्देश्यकी प्राप्तिमें भी सफल हो सके।

इस वर्ष 'आरोग्याङ्क' के लिये लेखक महानुभावोंने उत्साहपूर्वक जो सहयोग प्रदान किया है, वह अत्यधिक सराहनीय है। यद्यपि हमने लेखक महानुभावोंसे विषयवस्तुसे सम्बन्धित विशिष्ट सामग्री भेजनेका अनुरोध किया था, हमें इस बातकी प्रसन्नता है कि इस बार आरोग्यसे सम्बन्धित कुछ विशिष्ट सामग्री भी प्राप्त हुई। इसके साथ ही लेखक महानुभावोंने स्वास्थ्यसे सम्बन्धित अपने अनुभूत प्रयोग तथा नीरोग रहनेकी विभिन्न सामग्रियाँ भेजनेका कष्ट किया। हम उपयोगी इन सभी सामग्रियोंको 'विशेषाङ्क' में सँजोना चाहते थे, परंतु 'विशेषाङ्क' की पृष्ठ-संख्याकी परिधि सीमित होनेके कारण आयी हुई सम्पूर्ण सामग्रीको 'विशेषाङ्क' में समाहित कर पाना सम्भव नहीं हो सका।

यहाँतक कि संकोचपूर्वक 'विशेषाङ्क' के लिये स्वीकृत की गयी सामग्रीमेंसे छपाईके अन्तिम समयमें पृष्ठ-संख्या अधिक हो जानेके कारण 'कल्याण' के लगभग एक सौ पचास पृष्ठकी सामग्री कम करनी पड़ गयी। इस प्रकार 'आरोग्याङ्क' की सम्पूर्ण सामग्री 'विशेषाङ्क' में समाहित कर पाना सम्भव न हो सका। यद्यपि सामग्रीकी अधिकताके कारण इस अङ्कके साथ दो मासके 'परिशिष्टाङ्क' भी निकाले

जा रहे हैं, जिसमें फरवरी मासका एक 'परिशिष्टाङ्क' तो साथ ही समायोजित है तथा मार्च मासका दूसरा 'परिशिष्टाङ्क' भी अलगसे साथ ही प्रेषित किया जा रहा है।

सामग्रीकी अधिकता तथा स्थानाभावके कारण माननीय विद्वान् लेखकोंके 'विशेषाङ्क'के लिये भेजे हुए कुछ महत्वपूर्ण स्वीकृत लेख नहीं दिये जा सके, जिसके लिये हमें अत्यधिक खेदका अनुभव हो रहा है। यद्यपि इसमें कुछ सामग्री आगेके साधारण अङ्कोंमें देनेका प्रयत्न अवश्य करेंगे, परंतु विशेष कारणोंसे कुछ लेख प्रकाशित न हो सकें तो विद्वान् लेखक हमारी विवशताको ध्यानमें रखकर हमें अवश्य क्षमा करनेकी कृपा करेंगे।

हम अपने उन सभी पूज्य आचार्यों, परम सम्मान्य पवित्रहृदय संत-महात्माओं तथा चिकित्सा-जगत्के विशेषज्ञों-का सादर वन्दन करते हैं, जिन्होंने 'विशेषाङ्क' की पूर्णतामें किंचित् भी योगदान किया है। स्वास्थ्य-सम्बन्धी विचारोंके प्रचार-प्रसारमें वे ही निमित्त हैं। उनके सद्भावपूर्ण तथा उच्च विचारयुक्त भावनाओंसे 'कल्याण'को सदा सच्चा स्रोत प्राप्त होता रहता है। हम अपने विभागके तथा प्रेसके अपने उन सभी सम्मान्य साथी-सहयोगियोंको भी प्रणाम करते हैं, जिनके स्नेहपूर्ण सहयोगसे यह पवित्र कार्य सम्पन्न हो सका। हम त्रुटियों एवं व्यवहार-दोषके लिये क्षमाप्रार्थी हैं।

'आरोग्याङ्क' के सम्पादनमें जिन संतों एवं विद्वान् लेखकोंसे सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ है, उन्हें हम अपने मानस-पटलसे विस्मृत नहीं कर सकते। सर्वप्रथम मैं वाराणसीके समादरणीय पं० श्रीलालबिहारीजी शास्त्रीके प्रति हृदयसे आभार व्यक्त करता हूँ, जो आयुर्वेदके एक सफल चिकित्सकके रूपमें हमें प्राप्त हैं तथा जिन्होंने 'विशेषाङ्क'के लिये कुछ विशिष्ट सामग्री तैयारकर निष्कामभावसे अपनी सेवाएँ परमात्मप्रभुके श्रीचरणोंमें अर्पित कीं। इसके साथ ही सम्पादन-जगत्के उदीयमान सम्पादक श्रीशिवकुमारजी गोयलके प्रति भी हम आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने अपने पूज्य पिताजी श्रीरामशरणदासजी, पिलखुआके संग्रहालयसे आरोग्यसे सम्बन्धित अनेक दुर्लभ सामग्रियाँ हमें उपलब्ध करानेका कष्ट किया। इसके साथ ही हम अपने परम मित्र श्रीदीनानाथजी झुनझुनवालाके प्रति विशेष आभारी हैं, जिनकी प्रेरणासे प्रारम्भिक रूपमें इस 'विशेषाङ्क'के प्रकाशनके अंकुर उत्पन्न हुए तथा जिनके सहयोगसे चिकित्सा-जगत्के विशिष्ट

महानुभावोंके लेख भी हमें प्राप्त हो सके। इस अङ्कके सम्पादनमें अपने विभागके वयोवृद्ध विद्वान् पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा एवं अन्य महानुभावोंने अत्यधिक हार्दिक सहयोग प्रदान किया है। इसके सम्पादन, संशोधन एवं चित्र-निर्माण आदिमें जिन-जिन लोगोंसे हमें सहयोग मिला है, वे सभी हमारे अपने हैं, उन्हें धन्यवाद देकर हम उनके महत्त्वको घटाना नहीं चाहते।

वास्तवमें 'कल्याण'का कार्य भगवान्का कार्य है। अपना कार्य भगवान् स्वयं करते हैं, हम तो निमित्तमात्र हैं। हमें आशा है कि इस 'विशेषाङ्क'के पठन-पाठनसे हमारे सहृदय पाठकोंको नीरोग होनेकी प्रेरणा प्राप्त होगी तथा स्वस्थ रहनेके लिये वे जीवनमें सावधानी बरतेंगे।

शरीरको स्वस्थ एवं नीरोग रखनेके लिये यह आवश्यक है कि मनुष्यका आहार-विहार सम्यक् हो। जो मनुष्य अपने आचरणकी शुद्धता और हिताहार-विहारके सेवनकी ओर विशेष ध्यान देता है वह निश्चय ही सुखी और नीरोगी जीवनका उपयोग करता है—'स भवत्यरोगः' (चरक)।

विभिन्न रोगोंसे शरीरकी रक्षा करनेके लिये तथा चिरकालतक शरीरको स्वस्थ, नीरोग एवं आयुष्मान् बनानेके लिये महर्षि चरकने जहाँ शरीरके लिये आहार-विहार-सम्बन्धी नियन्त्रणका निर्देश किया है, वहाँ मनोव्यापारको भी स्वास्थ्यके लिये उत्तरदायी बताते हुए उसकी चञ्चलवृत्तिका भी निग्रह करनेका निर्देश दिया है। बुद्धिकी निर्मलता और वाणीकी शुचिता-प्रियताकी भी शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य-रक्षाके लिये नितान्त आवश्यकता है। अतः इनका नियमपूर्वक अनुशीलन करनेवाला व्यक्ति पूर्ण स्वस्थ कहलानेका अधिकारी है। जो व्यक्ति नियमपूर्वक स्वास्थ्य-सम्बन्धी आचरणका पालन करता है, मानसिक रूपसे प्रसन्न और चिन्तामुक्त रहता हुआ वचन और कर्मसे संयमित रहता है, उसे कभी रोगाक्रमण नहीं होता, जिससे वह सदैव पूर्ण स्वस्थ बना रहता है।

अन्तमें हम परमात्मप्रभुके श्रीचरणोंमें प्रणिपात करते हुए सम्पूर्ण चराचर जगत्के कल्याणकी कामना करते हैं—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभागभवेत्॥

—राधेश्याम खेमका

सम्पादक

